ISSN : 2320-2467

युगान्तर

अन्तरराष्ट्रीय शोध पत्रिका

त्रैमासिक पत्रिका

आरती पब्लिशिंग हाउस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

आरती पब्लिशिंग हाउस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

युगांतर अंतर्राष्ट्रीय शोध–पत्रिका

हेड ऑफिस : ए–5, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

मो॰ 9455251733, 9918156392, Website: www.theyugantar.in

Email: akhilesh_tiwari1979@yahoo.com, santoshtiwari05712@gmail.com

वर्ष 2024 – अंक 49 जनवरी – मार्च, 2024

युगांतर अंतर्राष्ट्रीय शोध–पत्रिका

(A Peer-Reviewed Research Journal)

यू.जी.सी. द्वारा अनुमोदित पत्रिका सं. 64649

ISSN : 2320-2467

संपादक : संतोष कुमार तिवारी

सह–सम्पादक : प्रो. आनंद प्रकाश त्रिपाठी, डॉ. हरि सिंह गौर – केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.)

सम्पादक मण्डल :

प्रो. मिथिला प्रसाद त्रिपाठी (पूर्व कुलपति) – संस्कृत विश्वविद्यालय, उज्जैन
प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी (पूर्व कुलपति) – संस्कृत विश्वविद्यालय, दिल्ली
प्रो. हुकुम चन्द, विभागाध्यक्ष, संगीत, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
डॉ. कमलेश कुमारी
प्रो. बी.एन. भालेराव – दिल्ली
डॉ. रुचिरा डिंगरा – दिल्ली
डॉ. ललिता त्रिपाठी – भोपाल
डॉ. कविता भाटिया – दिल्ली
डॉ. सीता लक्ष्मी – विशाखापट्टनम्
डॉ. आचार्य एस. शेपारत्नम् – आंध्र विश्वविद्यालय
डॉ. प्रतिभा पांडे – मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर
प्रो. आभा रूपेन्द्र पाल –पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़
प्रो. शुभ जोहरी – आर.टी.एम. विश्वविद्यालय, नागपुर
प्रो. जे.पी. मिश्रा – रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय जबलपुर
डॉ. शिवदयाल सिंह – महर्षि विश्वविद्यालय, अजमेर
डॉ. मो. शाकिर शेख – विभागाध्यक्ष, पूना कॉलेज
डॉ. गोपाल कृष्ण शर्मा – विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
डॉ. राकेश राणा, एमएमएच पीजी कॉलेज, गाजियाबाद
डॉ. रेखा अरोड़ा – दिल्ली

प्रमुख प्रवासी सम्पादकीय सलाहकार समिति :

डॉ. विजय कुमार मेहता – अध्यक्ष, अखिल विश्व हिन्दी समिति, न्यूयॉर्क, अमेरिका
प्रो. सत्येन्द्र श्रीवास्तव – कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, कैम्ब्रिज (यू.के.)
डॉ. शेर बहादुर सिंह – विश्व हिन्दी सेवी, न्यूयॉर्क, अमेरिका
डॉ. पद्मेश गुप्त – अध्यक्ष, यू.के. हिन्दी समिति, लंदन
डॉ. सुषमा बेदी – कोलम्बिया युनिवर्सिटी, न्यूयॉर्क
प्रो. हेमराज सुन्दर – महात्मा गांधी संस्थान, मोका, मॉरिशस
स्नेह ठाकुर – संपादक वसुधा, टोरण्टो, कनाडा
उषा राजे सक्सेना – उपाध्यक्षा, यू.के. हिन्दी समिति, लंदन
डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल – अध्यक्ष इण्डो नाईजीरियन सूचना एवं सांस्कृतिक मंच
डॉ. ऊषा देवी शुक्ला – डर्बन विश्वविद्यालय, डर्बन (दक्षिण अफ्रीका)
अपर्णा क्षीरसागर – डॉफिन विश्वविद्यालय, पेरिस, फ्रांस

आरती पब्लिशिंग हाउस एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

युगांतर अंतर्राष्ट्रीय शोध–पत्रिका

हेड ऑफिस : ए–5, क्रिश्चियन कॉलोनी, पटेल चेस्ट, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली–110007

मो. 9455251733, 9918156392, Website: www.theyugantar.in

Email: akhilesh_tiwari1979@yahoo.com, santoshtiwari05712@gmail.com

डॉ. घनश्याम शर्मा – वेनिस विश्वविद्यालय, इटली

रामप्रसाद भट्ट – हैम्बर्ग विश्वविद्यालय, जर्मनी

डॉ. पूर्णिमा बर्मन – यू.ए.ई.

प्रो. तजेन्द्र शर्मा – अमेरिका (यू.के.)

इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं की मौलिकता का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व लेखकों का है। आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों की अपनी अभिव्यक्ति है। युगांतर अन्तर्राष्ट्रीय शोध–पत्रिका अथवा सम्पादक मण्डल का उनसे सहमति होना आवश्यक नहीं है। युगांतर शोध–लेख, मूल प्रकाशन एवं मंगवाने हेतु निम्न पते पर सम्पर्क करें। (कृपया लेख ई–मेल के माध्यम से ही स्वीकार किया जायेगा।)

Editor in Chief

युगांतर शोध–पत्रिका

अनुक्रमणिका

क्रम सं.	विषय	पृ.सं.
1.	वर्तमान परिपेक्ष्य में विद्यालय समाज कार्य की भूमिका – डॉ. विनय मिश्रा	1-3
2.	हरियाणा के सन्त सम्प्रदाय – डॉ. कृष्णा मल्हान	4-11
3.	पर्यावरण सुरक्षा : अस्तित्व के लिए चुनौती – रॉयल दोसी	12-15
4.	सरयूपारीण – ब्राह्मणोद्भव–विमर्श – डॉ. शक्तिधर नाथ पाण्डेय	16-18
5.	स्त्री – अपर्णा तिवारी	19-19
6.	कठोपनिषद् में आत्मा का स्वरूप – डॉ. प्रमोद कुमार वैष्णव	20-23
7.	असाध्य वीणा से अज्ञेय का आधुनिक सन्दर्भ – नरेन्द्र पानेरी	24-28
8.	श्री रामचरितमानस से साम्प्रतिक समस्याओं का समाधान – डॉ. अम्बिकेश त्रिपाठी	29-34
9.	India and China: Political Concerns and Geopolitical Dynamics - Vivek Singh	35-40
10.	Enhancing Library Services: Key Digital Skills for Modern Librarians - Himanshi Ahuja	41-47
11.	मेघदूत में प्रकृति सौन्दर्य – डा. देवेन्द्र प्रताप सिंह	48-51
12.	राम की शक्ति पूजा : आम आदमी की व्यथा कथा – राजेश कुमार सेठिया	52-55
13.	''पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल की निबंध शैलियाँ'' – डॉ. द्वारिका प्रसाद चन्द्रवंशी	56-59
14.	भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी कविताओं में राष्ट्रबोध –डॉ. लालचंद सिन्हा	60-68
15.	Fuzzy Weak Interior Ideals In Semirings - Dr. Lokesh Jasoria	69-82
16.	Religion and Political Power in the Mughal Empire: A Historiographical Analysis of Dara Shukoh and Aurangzeb - Mahima Kamboj	83-88

खंड–13, अंक–49, वर्ष–2024 (जनवरी–मार्च, 2024) आईएसएसएन : 2320–2467, आईएफः 5.6

वर्तमान परिपेक्ष्य में विद्यालय समाज कार्य की भूमिका

डा. विनय मिश्रा
असिस्टेंट प्रोफेसर
समाज कार्य विभाग
डा. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

विकास व सशक्तिकरण के दौर में अभी भी दो तिहाई जनसंख्या गरीबी, भेदभाव, कुपोषण, अशिक्षा की असमानता, लिंग भेदभाव, युवा असंतोष को झेल रहा है। जहां 2020 तक हम एक सार्थक एवं सम्पन्न भारत के सपने को संजोकर चल रहे हैं वहीं महिला हिंसा, युवा असंतोष, वृद्धजन निष्क्रियता,बच्चों में कुपोषण की बढ़ती दर व सरकारी नीतियों के प्रति जन मानस की निष्क्रियता बढ़ती जा रही है। ऐसी स्थिति में भारत अपने सार्थक लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

इस स्थिति को सुधारने व उन्हें उनकी शक्ति का अहसास दिलाने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न नीति एवं योजनाओं को क्रियान्वित किया गया। इन योजनाओं के माध्यम से तृणमूल स्तर पर लक्षित समूह को उत्कृष्ट करने का प्रयास किया गया परन्तु इन सरकारी नीतियों व योजनाओं ने योजना पटल से निकल कर क्रियान्वित स्तर तक आते–आते मूल भावनाओं को खोना प्रारम्भ कर दिया, जिससे योजना का उचित एवं सीधा लाभ लाभान्वित वर्ग तक नहीं पहुंच पाया। इसका एक मुख्य कारण लाभार्थियों एवं कार्यकर्ताओं में योजनाओं के प्रति मूल भावना की जानकारी का अभाव है। इसके साथ ही प्रशासन संबंधी विभागों को योजनाओं को नीतिबद्ध तरिके से क्रियान्वित करने की जानकारी का अभाव होता है,जिसका भयावह परिणाम समस्त जन के सामने प्रत्यक्ष प्रदर्शित होता है।

ऐसी स्थिति में समाज कार्य के छात्र/छात्राओं को समाज कार्य के व्यावहारिक रूप से कार्य करने की आवश्यकता है, जहां छात्र/छात्राओं विभिन्न कार्यरत संगठनों से जुड़कर व्यावहारिक लाभ प्राप्त कर समाज कार्य विद्यालय द्वारा चिन्हित ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में स्वतंत्र रूप से विभिन्न गतिविधियों के संचालन के माध्यम से निश्चित क्षेत्र में लाभ प्रदान किया जा सके। समाज की वर्तमान समस्याओं से जूझते हुए लोगों की सामाजिक मानसिक विकास को ध्यान में रखकर विकासात्मक कार्यक्रम सरकारी तथा गैर सरकारी योजनाओं के माध्यम से सफलतापूर्वक किया जा सकता है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक बदलाव के परिदृश्य में अद्वितीय परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

सरकार द्वारा अब सामान्यतः गैर सरकारी संस्थाओं को विभिन्न विकास कार्यक्रम संचालित करने की जिम्मेदारी दी गयी है, जिससे समाज कार्य विद्यालय भी प्रभावित हो रहे हैं और समाज कार्य विद्यालयों से सम्बद्ध छात्र/छात्राएं विकास के स्तर पर विभिन्न ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में जाकर समाज के उत्थान हेतु विशेषकर महिला एवं बाल विकास संबंधी मुद्दों पर अपना सकारात्मक प्रयास किया जा सकता है।

वर्तमान समय की मांग को दृष्टिगत रखते हुए छात्र/छात्राएं क्षेत्र में जाकर अपने सैद्धान्तिक ज्ञान को अभ्यास से बदलने का कार्य कर व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सकता है, जिसके तदोपरान्त ही लक्ष्य को उसकी मूल भावना, उद्देश्य व नियोजित रणनीति के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है।

वर्तमान में 90 प्रतिशत से अधिक विकास योजनाएं गैर–सरकारी संगठनों के द्वारा क्षेत्रों में आयोजित हो रही हैं। समय चक्र में बदलाव के साथ इन योजनाओं के क्रियान्वयन को तकनीति ज्ञान की जानकारी समुचित नहीं हो पा रही है इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि समाज कार्य विद्यालय के छोटे–छोटे पाठ्यक्रम प्रशिक्षण हेतु संचालित करने चाहिए। इस दृष्टि से देखा जाए तो निम्न प्रशिक्षण एवं कार्यशालाओं का आयोजन समाज कार्य विद्यालय के द्वारा किया जा सकता है–

- ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं सामुदायिक संगठन प्रबंधन
- ग्रामीण विकास में संलग्न एजेन्सियां तथा उनकी कार्यपद्धति

- स्वैच्छिक संस्थाओं का प्रशासनिक प्रबंधन
- स्वैच्छिक संस्थाओं का वित्तीय प्रबंधन
- ग्रामीण विकास की योजनाएं एवं उनकी क्रियान्वयन पद्धति
- प्रोजेक्ट नियोजन एवं प्रबंधन

इस संदर्भ में संचालित अल्पावधि पाठ्यक्रमों के साथ स्थानीय स्तर पर अन्य संबंधित कार्यशालाओं, सेमिनार व संगोष्ठी आदि का आयोजन जागरूकता फैलाने व क्रियान्वित गतिविधियों के बेहतर प्रबंधन में मददगार हो सकती है, जिसके माध्यम से समाज कार्य विद्यालय बेहतर कार्य कर सकता है।

वहीं वर्तमान परिपेक्ष्य में देखा जाए तो अधिकतर कार्यक्रमों का क्रियान्वयन गैर–सरकारी संगठनों के द्वारा विभिन्न स्तरों पर किया जा रहा है। ऐसी स्थिति में गैर–सरकारी संगठनों के पदाधिकारियों एवं कार्य कर्ताओं का क्षमतावर्धन कराना आवश्यक हो जाता है। इन पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों में परियोजना संबंधी नियोजन की प्रचुर जानकारी दी जानी चाहिए। इस क्षेत्र में समाज कार्य विद्यालय गैर–सरकारी संगठनों की क्षमता निर्माण अपनी अहम भूमिका निभा कर समाज की स्थिति को बेहतर मोड़ देने का कार्य करता है।

इसके अंतर्गत ही समाज कार्य विद्यालय के अंतर्गत ही पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों के क्षमतावर्धन हेतु समसमायिक सामाजिक मुद्दों पर विशेष प्रशिक्षण कराने की आवश्यकता को अनुभव किया जा सकता है। इस प्रकार के अल्पावधि वाली कार्यशाला/प्रशिक्षण की नियोजित सारणी स्थानीय, ब्लाक व राज्य स्तर पर प्रदर्शित की जानी चाहिए, जिससे इच्छुक मण्डल अपना प्रतिभाग सुनिश्चित करा सके।

वही समाज कार्य विद्यालय द्वारा समाज कार्य पाठ्यक्रम में सामाजिक परिक्षेत्र से जुड़े समसामयिक विकास से संबंधित विभिन्न पहलुओं को समाज कार्य पाठ्यक्रम में विस्तृत रूप से सम्मिलित करने की आवश्यकता है। बढ़ते वैश्वीकरण, निजीकरण के दौर में महिलाओं और बच्चों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है, जिसके कारण सरकार द्वारा विभिन्न कानूनों में बदलाव भी किए जा रहे हैं। अतः समाज कार्य पाठ्यक्रम में महिला कानून, महिला सशक्तिकरण, बाल श्रम निषेध कानून, बाल अधिकार एवं मौलिक अधिकारों से संबंधित विषयों पर व्याख्यान, वाद–विवाद, संगोष्ठी आदि कार्यक्रमों का आयोजन नियमित अंतराल पर आयोजित कर गैर–सरकारी संगठनों की सहभागिता सुनिश्चित करायी जानी चाहिए, जिसका प्रबल प्रभाव समाज कार्य विषय के छात्र/छात्राओं द्वारा समाज पर पड़ेगा।

वहीं इसके पटल पर देखा जाए तो भिन्नता में एकता को दर्शाता हुआ भारत देश विभिन्न सांस्कृतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विविधता को आत्मसात किए हुए है। अतः नियोजित कार्यक्रम को प्रत्येक क्षेत्र में समान रूप से लागू नहीं किया जा सकता। क्षेत्र में गतिविधि को लागू करने से पूर्व वहां की सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक स्थिति को विशेष रूप से दृष्टिगत रखना होता है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक होता है कि समाज कार्य विभागों को सोशल रिसर्च एण्ड डेवलपमेंट इन्स्टीट्यूट के रूप विकसित कर छात्र/छात्राओं के साथ मिलकर मॉडल तैयार किया जाए जिनकी सहायता से नियोजित कार्यक्रम को आसानी से क्रियान्वित किया जा सके। साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा जाए कि क्रियान्वयन लचीलेपन के साथ हो जिसमें आवश्यकता पड़ने पर फेर–बदल किया जा सके।

इन समस्त कार्यविधियों को क्रियान्वित करने से पूर्व छात्र/छात्राओं को समाज कार्य की जानकारी देने के साथ मनो–सामाजिक अर्थ को भी समझाने की प्रतिबद्धतता होनी चाहिए क्योंकि अधिक पिछड़े इलाकों या सामाजिक आर्थिक रूप से पिछड़ी महिलाओं की मनो–सामाजिक स्थिति अन्य महिलाओं से अलग होती है। ऐसी स्थिति में छात्र/छात्राओं को उनके स्तर पर उनकी मनोस्थिति को समझते हुए अपने व्यावहारिक ज्ञान का उपयोग करना चाहिए। यही बदलाव भावी समाज कार्यकर्ताओं द्वारा सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देगा।

वर्तमान में विभागों का उत्तरदायित्व बनता है कि व्यावसायिक समाज कार्य द्वारा समाज कार्य विद्यालय को ऐसे तैयार किए जाए कि उनकी प्रशासनिक व व्यावसायिक क्षमता का विकास हो और व उसका सकारात्मक उपयोग क्षेत्र में करे।

संदर्भ सूची

- ट्रेविथिक पामेला, सोशल वर्क स्किल, 2000
- ग्लिकेन डी0 मॉर्लि, सोशल वर्क इन द 21 सेन्चुरी, 1997
- कोरनोयर बैरी, द सोशल वर्क स्किल वर्कबुक, 1991
- शूलेमन लारेन्स, द स्किल ऑफ हेल्पिंग इन्डीविजवल्स, फैमिली, ग्रुप्स एण्ड कम्यूनिटी, 1979
- मसेट केरोल रिप्पी, मिशेल एस0 केली, रोबर्ट कान्स्टेबल, स्कूल सोशल वर्कःप्रैक्टिस, पॉलिसी एण्ड रिसर्च, 2015

हरियाणा के सन्त सम्प्रदाय

– **डॉ. कृष्णा मल्हान**
एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी
राजकीय महाविद्यालय, सैक्टर–9 गुरुग्राम

हरियाणा भूमि सन्तों की उर्वरा भूमि रही है। यहाँ समय–समय पर विभिन्न सन्त सम्प्रदायों के अनेक प्रसिद्ध सन्त हुए हैं जिनका साहित्य भी सन्त साहित्य में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। एक दशक पहले तक दो–चार संतों को छोड़ विद्वत् समाज हरियाणवी सन्तों और उनके साहित्य से अपरिचित ही रहा है।

इस उपेक्षित किन्तु समृद्ध क्षेत्र की ओर सर्वप्रथम सन्त साहित्य मर्मी डॉ. सूरजभान की दृष्टि पड़ी। उनका 'हरियाणा का सन्त साहित्य' हमारे सामने आया और हरियाणा के अनेक सन्तों और उनके उत्कृष्ट उदात्त साहित्य से विद्वत्–समाज पहली बार परिचित हुआ। उन्हें सन्तों और उनके साहित्य का परिचय प्रस्तुत विषय में दिया जा रहा है।

हरियाणा का कबीर पन्थ –

डॉ. सूरजभान का कहना है कि 'कबीर–पन्थ जितना प्राचीन एंव प्रतिष्ठित है हरियाणा में उस हिसाब से कबीर–पन्थी साहित्य प्राप्त नहीं हुआ। उनका आगे कहना है कि हरियाणा के जिन–जिन कबीर पन्थी स्थानों पर जाने का मौका मिला उन ठिकानों का उत्तरी भारत की सन्त परंपरा उल्लिखित कबीर–पन्थी प्राचीन शाखाओं से कोई सम्बन्ध दिखाई नहीं दिया। इस क्रम में मुझे लगा है कि हरियाणा की प्रमुख कबीर पन्थी एक स्वतन्त्र शाख है जो अपना सीधा सम्बन्ध कबीर से जोडत्रती प्रतीत होती है। इस शाखा का नाम हम 'बादली शाखा' रख लेतेह" क्योंकि इसके प्रवर्तक सन्त इन्द्राज जी बादली निवासी थे।'[1]

हरियाणा में जिन कबीर पन्थी सन्तों का साहित्य उपलब्ध है उनके पन्थ प्रवर्तक गुरु इन्द्राज जी (अक्टूबर, 1868, जनवरी, 24, 1966) थे। इनका प्रमुख स्थान बादली, तहसील झज्झर, जिला–रोहतक है। कहते हैं कि इनको 'उपदेश' स्वयं कबीर साहेब ने ही दिया था। सन्त इन्द्राज जी अनपढ़, सरल प्रकृति के कृषक थे। इनके खेत में ही इनकी समाधि है जहाँ वर्ष में एक बार वार्षिक भण्डारा एवं सत्संग होता है। इनकी कोई बाणी नहीं मिलती।

इनकी शिष्य परम्परा में सन्त हरदेदास (1932 वि.सं. 2015 वि.) हुए हैं। 'हृदय प्रकाश' इनकी रचना है जो सन् 1962 में प्रकाशित हुई है। बाणी की पृष्ठ संख्या 411 है। इनकी शिष्य परंपरा में आने वाले सन्त जिनका साहित्य उपलब्ध है, ये हैं– राम रतन दास (सन् 1908, जनवरी 21, 1964), इनके शिष्यों ने 'मारग सार' (राम रतन सागर) इनका स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करवाया है, जिसमें इनका तो केवल एक 'पद' है किन्तु अन्य अनेक प्रसिद्ध सन्तों की वाणी संकलित है। यह संकलन 600 पृष्ठों का है। इनका प्रमुख ठिकाना बहादुरगढ़ है।

दुर्गादास (संवत् 1973)ः इनके 50 पदों की पाण्डुलिपि देखने को मिली है। सूरजदास इनके भी 25–30 पद दुर्गादास जी के पास देखने को मिले हैं। सन्त दूलमदास (सं. 1962 सं. 2029) इनका बड़ा प्रभावशाली व्यक्तित्व था। इन्होंने सन्त जैतराम जी की वाणी का प्रकाशन करवाया जो अब तक अप्रकाशित थी। इनके भी लगभग 50 पद 'जैतराम वाणी' में प्रकाशित हैं। इनका प्रमुख ठिकाना माड़ौधी जाटान (रोहतक) है। सन् 1985 में सन्त नितानन्द की बाणी 'सत्य–सिद्धान्त–प्रकाश' का चौथा संस्करण भी इन्हीं के सत्संग भवन ने प्रकाशित करवाया है।[2]

सन्त गिरधारी दास (सं. 1959) इनकी हस्तलिखित वाणी `क 146 पद तथा हजारों साखियाँ विद्यमान हैं।[3]

एक अन्य सन्त श्री आसादास कृत 'गीता अनुवाद' (पाण्डुलिपि) प्राप्त हुआ है जिसमें गीता–श्लोकों का सुन्दर भाषानुवाद है।[4]

हरियाणा कबीर पन्थी सन्तों की साधना पद्धति 'सूरत शब्द' योग के नाम से जानी जाती है। सन्त हरदे दास का कहना है–

जब सुरति शब्द लग जावै रे, तब सुख का सागर पावै रे।
हो जा सुरति बिवान स्वारा रे, तब एक पलक में पारा रे।।[5]

सन्त दूलमदास जी का कहना है–

नाभि नासिका बीच में उलटी चक्षु फेर।
सतगुरु साहिब सहजै मिलैं कछु ना लागै देर।।[6]

साधक को त्रिकुटी में आखों पलट कर ध्यान लगाना पड़ता है और इस विधि से 'तिलधार में दिलदार' के दर्शन होते हैं। सतगुरु, नाम स्मरण, सत्संगति आदि का इनकी साधना पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान है।

कबीर पन्थी आपस में मिलने पर 'सत साहिब' कहकर अभिवादन करते हैं। हरियाणा की बादली शखा में तो बहुत कुछ कबीर पन्थ की मूल बातें अद्यावधि सुरक्षित हैं, शेष ठिकानों पर ग्रन्थ–पूजन, मूर्ति–पूजन आदि का समावेश हो गया है। कई स्थानों पर आरती तथा धूप–दीप इत्यादि की औपचारिकता ही शेष रह गई है।[7]

हरियाणा का गरीब पन्थ –

हरियाणा के सन्त साहित्य में 'गरीब पन्थ' और इसके प्रवर्तक सन्त गरीबदास का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सन्त गरीबदास (सन् 1717–17 ई.) का जन्म स्थान छुड़ानी है। यही इनकी साधना स्थली तथा पन्थ का प्रमुख 'धाम' है। श्री भक्तराम द्वारा रचित 'जीवन चरित्र' में इनके जीवन सम्बन्धी सूचनाएं एवं अनेक चमत्कारिक घटनाएं संकलित हैं। श्री जैतराम जी की वाणी में भी इनके जीवन सम्बन्धी अधिकांश घटनाओं एवं तथ्यों का प्रामाणिक विरण है। गरीब–पन्थ में इनको कबीर का अवतार माना जाता है। यथा–

दास गरीब कबीर है, कबीर गरीब जान
तथा
गरीब कबीर भेद नहीं दूजा, जैतराम नित कीजै पूजा।[8]

सन्त गरीबदास की वाणी 'ग्रन्थ साहब सद्गुरु श्री गरीबदास जी की वाणी' का प्रकाशन सर्वप्रथम सं. 1981 वि. में स्वामी अजरानन्द द्वारा किया गया। इसके पश्चात् तो कई स्थानों से इसका प्रकाशन हो चुका है। इनकी वाणी विपुल एवं श्रेष्ठ है। इनकी संख्या 18500 के लगभग है।

सन्त गरीबदास के पुत्र एवं शिष्य सन्त जैतराम भी अपने पिता की तरह प्रसिद्ध सन्त हुए। इनकी वाणी 'ग्रन्थ साहिब' श्री जैतराम जी की बाणी' 510 पृष्ठों का बड़े आकार का ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन सन् 1955 में सन्त दूलमदास जी कबीर–पन्थी ने करवाया था।[9]

गरीब पन्थ में कबीर का अत्यधिक प्रभाव है। गरीब पन्थ में गरीब दास को कबीर का अवतार तथा समशील ही माना जाता है। इनकी साधना पद्धति भी कबीर अथवा कबीर पन्थ के समान ही है। जैतराम जी का कहना है–

गरीब चार पदारथएक करि, सुरति,निरति मन पौन
असल फकीरी जोग योह, गगन मंडल कूं गौन।।[10]

गरीब–पन्थ की गद्दी 'पैतृक' है। इनके पश्चात् गुरु गद्दी के अधिकारी इनके पुत्र तुरतीराम जी हुए। इनके पश्चात् दानीरीम, शिवदयाल जी तथा रामकृष्ण दास क्रमशः महन्त बने। इनके पश्चात् श्री गंगा सागर तथा दया सागर जी गुरु–गद्दी के अधिकारी बने। वर्ष में दो बार सत्संग–मेला लगता है।

हजारों श्रद्धालु छुड़ानी धाम में एकत्रित होते हैं।[11] प्रातः एवं संध्या समय 'ब्रह्म वेदी' आरती के रूप में बोली जाती है।

महंत दयासागर जी ने एक ट्रस्ट बनाया है जिसके अधीन सन्त साहित्य का प्रचार–प्रसार करने की योजना है। 'गरीब–सन्देश' नामक एक पत्रिका का भी प्रकाशन 'छुड़ानी धाम' से हो रहा है। सन्त साहित्य एवं सामाजिक विषयों पर महन्त जी द्वारा समय–समय पर गोष्ठियों का आयोजन किया जाता है। महन्त जी शुशिक्षित साधक हैं।[12]

हरियाणा का घीसा–पन्थ –

हरियाणा के सन्त साहित्य में घीसा पन्थ का महत्वपूर्ण स्थान है। घीसा साहब (सं. 1860 सं. 1925 वि.) का जन्म दिल्ली के निकट खेकड़ा ग्राम में हुआ था। यही इनकी साधना स्थली है। घीसा–पन्थ का प्रमुख स्थान भी खेकड़ा ही है। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके शिष्यों एवं श्रद्धालुओं द्वारा खेकड़ा में इनकी समाधि (छतरी साहब) बनायी गयी। यहाँ छतरी साहब में आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा, मार्गशीर्ष शुक्ला दशमीं तथा फाल्गुन पूर्णिमा के दिन वर्ष में तीन बार सत्संग मेलों का आयोजन किया जाता है। इन मेलों को घीसा दरबार की संज्ञा दी जाती है।

सन्त घीसा दास जाति के जुलाहा थे। इस बात की पुष्टि 'ग्रन्थ साहब' के निम्न अंश से हो जाती है। यथा–

घीसा सन्त शरण सतगुरु की, रेजा बुनते भाई।[13]

सन्त गरीब दास जी की तरह घीसा जी भी कबीर साहब को अपना गुरु मानते हैं।

महन्त गद्दी वंशानुगत क्रम से प्राप्त होती है। इनके पश्चात् इनके पुत्र प्रेमदास को गरु गद्दी पर आसीन किया गया। इनके पश्चात् श्री रामकिशन दास, श्री अचलदास जी, तथा श्री जितेन्द्र दास क्रमशः महन्त बनते आ रहे हैं। श्री जीतादास एवं नेकीदास जी घीसा जी के प्रसिद्ध शिष्य हुए हैं। श्री नेकीदास जी की प्रमुख गद्दी नाहरी में सिति है। महन्त समन्दर दास ने इनकी गद्दी को एक संस्थान का रूप दे दिया है। जहाँ से 'सन्त समागम' पत्रिका प्रकाशित की जाती है तथा यहाँ से 3–4 सन्त वाणी संग्रह प्रकाशित करवाये हैं। पन्थ में श्री जीतादास जी सर्वाधिक सन्त हुए हैं।

घीसा जी के नाम से प्राप्त वाणी पहले 'सचित्र ग्रन्थ साहब' नामक रचना में प्रकाशित की गई। बाद में 'घीसा दराबर साहब' से प्रकाशित 'ग्रन्थ साहिब' सं. 2015 वि. में प्रकाशित की गई। इनकी 'बाणी' में 40 दोहे 350 साखियां तथा 93 पद संकलित हैं। घीसा जी तथा पन्थ के अन्य साधकों तथा महन्तों की वाणी के साथ ही उपर्युक्त 'ग्रन्थ साहब' में जीता जी की वाणी है। इनकी बाणी सर्वश्रेष्ठ है। इनके पदों की संख्या दो हजार से अधिक हैं। घीसा पन्थ में घीसा जी के एक अन्य शिष्य ईश्वर दास (सं. 1932–2000) हुए हैं जिनका स्थान घुडिपाल (जिला जालंधर) पंजाब मे है। इनकी बाणी 'बागी ईश्वर दास जी महाराज' शीर्षक से पंजाबी में प्रकाशित है। इनकी बाणी में 143 पद, 4 कुंडलियां, एक कविता, एक सवैया तथा बारह बेंन सम्मिलित हैं। एक अन्य सन्त द्योतराम जी नेकीराम जी के शिष्य हुए हैं। इनका स्थान पाण्डु–पिंडारा है। इनकी बाणी में 340 साखियां तथा 25 पद उपलब्ध हैं।

घीसा पन्थी ठिकानों में प्रातः एवं संध्या समय जो आरती की जाती है उसके बोल अधिकांशतः गरीबदास जी की बागी से तथा थोड़े जीतादास जी द्वारा रचित आरती से लिए गए हैं। इस पन्थ के प्रमुख ठिकाने खेकड़ा, नाहरी, पिंडारा, निर्जन, रामपुरा (पंजाब) जगतपुरा (पंजाब) आदि हैं।

साधना पद्धति का स्वरूप इस पन्थ में कबीर पन्थ वाला ही है। गुरु महिमा, स्मरण, सत्संगति आदि का पन्थ–साधना पद्धति में महत्वपूर्ण स्थान है।

हरियाणा का साध सम्प्रदाय –

साध सम्प्रदाय के विषय में आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने कई प्रश्न चिन्ह लगाये हैं। उनका कहना है कि इसके इतिहास के सम्बन्ध मेमं उठाने वाले प्रश्नों के उत्तर आज तक नहीं दिये जा सके हैं, न इसके प्रधान प्रवर्तकों की प्रामाणिक जीवनियां ही उपलब्ध हो सकी हैं। इस सम्प्रदाय की उत्पत्ति, पगति तथा सिद्धान्तों के विषय में अनेक बातें जहां की तहां रह गई। कई विद्वानों ने तो 'साध सम्प्रदाय

तथा सतनामी सम्प्रदाय' सर्वथा एक मान कर इनके इतिहासों को भ्रांतिपूर्ण बना दिया है।[14] इसका उत्तरदेते हुए डॉ. सूरजभान जी का कहना है कि अपने अनुसंधान के दौरान मुझे जो कुद सांप्रदायिक सामग्री मिली तथा एकाध सयाने 'साध' से बाते की हैं, इनके आधार पर साध सम्प्रदाय सम्बन्धी कुछ प्रश्नों के उत्तर अवश्य मिल जाते हैं।'[15]

पन्थ की पोथी 'निर्वान ज्ञान' तथा 'अमृत बाणी' इस पन्थ सम्बन्धी कुछ सूचनाएँ देती हैं। इनके अतिरिक्त हमारे पास कोई प्रामाणिक सामग्री नहीं है। उदादास इस पंथ के प्रवर्तक हैं। 'निर्वान ज्ञान' इनके द्वारा रचित है। सं. 1723 वि. में उदादास जी ने अपनी गद्दी वीरभान तथा जोगी दास को सौंपी थी। यह गद्दी हरियाणा के नगर नारनौल के निकट हैं।

सन्त उदादास के अनुसार 'साध' वह है जो सतनाम और 'सत' शब्द का साधक होता है। इस पन्थ में साधना पद्धति 'सत' नाम आश्रित सुरत शब्द योग ही हैं

फर्रूखाबाद इनका मुख्य केंद्र है। यहाँ का साधबाडा कभी से प्रसिद्ध है। साहित्यिक दृष्टि से साध सम्प्रदाय एकदम से दरिद्र हैं।

हरियाणा का चरणदासी सम्प्रदाय –

चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त चरणदास (सं 1760 से 1839 वि.) के जीवन की सभी घटनाओं तथा तथ्यों सम्बन्धी तीन प्रामाणिक रचनाएं उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम 'गुरु भक्ति प्रकाश' संवत 1826 वि., इनके जीवन काल में ही इनके प्रमुख शिष्य सन्त रामरूप जी द्वारा इनकी जीवन लीला लिपिबद्ध की गई थी। दूसरी कृति 'श्री लीला सागर है' जो इनके शिष्य जोगजीत जी द्वारा लिखी गई तथा तीसरी रचना 'श्री श्याम चरणदास चरितावली' महन्त गंगादास द्वारा लिखी गई है। इनकी लीला स्थली दिल्ली ही रही है।

सन्त चरणदास के 52 प्रसिद्ध शिष्य हुए हैं। इनमें रामरूप जी, सहजोबाई, दयाबाई, श्री जुगतानन्द जी तथा श्री जोगजीत जी उल्लेखनीय हैं।

सहजो बाई जी का 'सहज प्रकाश' तथा दया बाई जी का 'दया बोध' दोनों ही रचनाएं दिल्ली स्थित श्यामचरण दास प्रकाशन कार्यालय से प्रकाशित हैं। 'दयाबोध' वेवेडियर प्रेस प्रयाग से भी प्रकाशित है। इन दोनों सन्तों की बाणी का निर्गुण साहित्य में अप्रतिम स्थ्ज्ञान है। सहजो जी तथा दया जी का जीवन चरित्र 'श्री लीला सागर' में प्रामाणिक रूप में उपलब्ध है।

गुसाईं जुगतानंद भी चरणदास जी के प्रसिद्ध शिष्यों में हुए हैं। इनकी हस्तलिखित रचना का परिचय देते हुए डॉ. सूरजभान जी का कहना है कि 'मुझे यह ग्रन्थ रोहतक के चरणदासीय महन्त श्री दुर्गादास जी से प्राप्त हुआ। बाणी गुण और मात्रा दोनों में ही पर्याप्त समृद्ध है। इसके 1018 पृष्ठ हैं।'[16]

चरणदासी पन्थ को 'शुक सम्प्रदाय' भी कहते हैं। पन्थ में ऐसी मान्यता ळै कि श्री शुकदेव (व्यास–पुत्र) ने साक्षात् प्रकट होकर चरणदास को अपने मत में दीक्षित किया था।

हरियाणा में चरणदासी सन्तों की प्रमुख गद्दियाँ– खरक, कुरूक्षेत्र, खरखौदा, नारनौल, बैरी, परीक्षितपुरा, रिवाड़ी, रोहतक आदि हैं। अनेक और गावों में भी इनके स्थल हैं।

चरणदासी साधु गृहस्थ तथा विरक्त दोनों होते हैं। इनका परिधान पीला होता है। प्रातः एवं संध्या युगलमूर्ति (राधा–कृष्ण) के सामने आरती का विधान है। माला, तिलक, तीर्थ, व्रत आदि का भी विधान है। डॉ. सूरजभान जी का कहना है कि 'महन्तों की बातचीत से स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि यह पन्थ अब शुद्ध सगुणवादी बन गया है। महन्त लोग तो अब आरती, कीर्तन आदि करने की जहमत भी नहीं उठाते। इसके लिए इन्होंने पुजारी रख छोड़े हैं। इनका आगे कहना है कि 'ये लोग राधा–कृष्ण कहकर एक–दूसरे का अभिवादन करते हैं। साहित्यिक दृष्टि से यह पन्थ बडा समृद्ध है। मेरा विश्वास है कि खोज करने पर और भी चरणदासी सन्तों की रचनाएँ प्रकाश में आ सकती हैं।[17] चरणदासी वैशख अमावस्या को श्री शुकदेव की जयन्ती के उपलक्ष्य में वार्षिक मेले अपनी–अपनी गद्दियों पर मनाते हैं।

हरियाणा का समता पन्थ –

हरियाणा पन्थ के प्रवर्तक सन्त मंगतराम (सन् 1903–1954) के जीवन सम्बन्धी सभी सूचनाएं 'सन्त जीवन साखी' (उर्दू) में उपलब्ध हैं जो स्वयं मंगतराम जी द्वारा रचित है। इनका प्रमुख आश्रम जगाधरी (जिला–यमुनानगर) में स्थित है जहाँ मंगतराम जी की समाधि भी है। इनकी दो प्रमुख रचनाएं हैं एक 'समता प्रकाश' तथा दूसरी 'समता विलास'।

समतापन्थ की साधना पद्धति के बारे में मंगतराम जी का कहना है कि 'समता योग' यानि 'सुरत शब्द की एकता' सिमरन 'योग का अभ्यास' शब्द यानी ध्यान–योग शब्द में स्थित होना यही राजयोग है। राजयोग की साधना को छोड़ सब अंधविश्वास का त्याग करना, ईश्वर सिमरन ज्ञान, ध्यान, सत्संग, परोपकार को मुख्य धर्म जानकर हर वक्त धारणकरना, यह सहज योग समता का नियम है।[18]

पंथ में श्री मंगतराम की शिष्य परम्परा में आने वाले किसी उल्लेखनीय शिष्य का उल्लेख नहीं मिलता।

हरियाणा का परमानन्दी पन्थ –

इस पन्थ के प्रवर्तक श्री परमानन्द जी (सं. 1924–2011 वि.) है। इनके जीवन सम्बन्धी सूचनाएं 'हंस चेतावनी' के आरम्भिक पृष्ठों में संकलित हैं। इनकी दो रचनाएं 'हंस चेतावनी' तथा 'परमानन्द ज्ञान आनंद उदय सागर' है।[19] दोनों ही पुस्तकों का प्रकाशन इनके शिष्यों ने इनके मरणोपरांत करवाया।

इनके शिष्यों में सुधानन्द जी (1882–1961) हुए हैं जिनके केवल 3 पद उपलब्ध हुए हैं। एक अन्य शिष्य मोहर सिंह हैं जिनके हंस चेतावनी में दो पद संकलित हैं। एक अन्य सन्त प्रीतानन्द हुए हैं जिन्होंने परमानन्द जी की वाणी का प्रकाशन करवाया है।

हरियाणा का बेनामी पंथ –

हरियाणा के सन्त साहित्य में बेनामी पन्थ का अपना विशिष्ट स्थान है। वैसे तो इस पन्थ का प्रमुख आश्रम अलवर में है किन्तु इसे हरियाणा प्रदेश से ही सम्बद्ध माना गया है। क्योंकि इस पंथ के प्रवर्तक सन्त कक्कड़ जी एवं अनेक अन्य बेनामी सन्तों की जन्म एंव साधना स्थली हरियाणा ही है।

सन्त कक्कड़ जी का जन्म ग्राम मिलकपुर (जिला–गुड़गांव) में हुआ था। इनके जीवन सम्बन्धी सभी सूचनाएं 'आत्मबोध' में संकलित हैं।[20] इनके नाम से कोई रचना नहीं मिलती। इनके प्रसिद्ध शिष्य 'बेनामी जी' जो अपने पन्थ में सर्वाधिक प्रभावशाली सन्त हुए हैं इन्हीं के नाम पर पन्थ का नामकरण किया गया है। इनका जीवन वृत्त 'आत्मबोध' मेमं संकलित है। इनकी रचनाएं भी 'आत्मबोध' में संकलित हैं।

बेनामी के शिष्य मंगलदास, गरीबदास, गोपालदास हैं। गोपालदास जी का प्रमुख झज्झर रहा है। इनके विषय में डॉ. सूरजभान जी का कहना है कि इनका जीवन वृत्त मैंने बाबा ज्ञानदास से प्राप्त किया तथा गोपाल दास जी की वाणी 'अमृतवाणी' शीर्षक से प्रकाशित करावयी थी, वह अब समाप्त है। डॉ. सूरजभान जी का कहना है कि इनकी वाणी की हस्तलिखित पोथी से मैंने अपनी पुस्तक के लिए साखियां ली हैं।[21]

बेनामी पंथ में 'बेनामी' उस परम तत्त्व का ही समशील है जिसे सन्त ब्रह्म, सतपुरुष आदि की संज्ञा देते हैं। जैसे–

बेनामी सत्य स्वरूप, सच्चिदानंद आनंदमय।[22]

प्राणायाम संबंधित सुरत शब्द योग ही इनकी पद्धति है। इसके साथ सतगुरू, नाम सुरमन तथा संतों का संग भी इनकी रहनी में आवश्यक है।

अलवर (राजस्थान) सार्वजनिक गोशाला इनका प्रमुख बाड़ा (आश्रम) है।

हरियाणा का राधा–स्वामी पन्थ –

राधा स्वामी पंथ में 'हजूर महाराज साहेब' (रायशलिगराम) बड़े प्रभावशाली सन्त हुए हैं। इन्हीं के शिष्य महर्षि शिवव्रत लाल वर्मन हुए हैं। शिवव्रत लाल जी शुशिक्षित साधक हुए हैं। इन्होंने 'साधु',

'फकरी', 'सन्त', 'सन्त–समागम' जैसी अनेक पत्र–पत्रिकाओं का वर्षों तक सम्पादन एवं संचालन किया। इन्होंने अनेक सैकड़ों रचनाएं लिखीं जिनका आध्यात्मिक क्षेत्र में स्थायी महत्व है। इनका कर्म–क्षेत्र अधिकांश लाहौर ही रहा है। इनकी मृत्यु 1966 वि. में हुई।[23] हरियाणा में जो राधा–स्वामी पन्थी साहित्य उपलब्ध है वह उन्हीं शिवव्रत लाल जी के शिष्यों द्वारा लिखा गया है।

महर्षि शिवव्रत लाल की शिष्य परम्परा में आने वाले सन्त रामसिंह 'अरमान', किदार सिंह, फकीर चन्द, नन्दू सिंह तथा द्वारकादास आदि प्रसिद्ध हरियाणवी साधक हुए हैं। इनमें सन्त रामसिंह 'अरमान' का साहित्य प्रसिद्ध है। इनका जन्म संवत् 1952 तथा देहावसान 2032 वि. में हुआ। इनका जन्म स्थान जुई (जिला भिवानी) है। ये व्यवसाय के अध्यापक रहे। सामान्य गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए साधना पथ में भी इन्होंने पर्याप्त गति पायी। इनके जीवन सम्बन्धी अनेक तथ्य इनकी वाणी में अन्तः साक्ष्य के रूप में उपलब्ध हैं।

सन्त रामसिंह 'अरमान' की दो रचनाएं हैं– 'अरमान सागर' तथा 'अरमान रामायण'। इनकी रचना मे राधा स्वामी पन्थ सम्न्धी धारणाओं तथा आचरण सम्न्धी कुछ विधि निषेधों का सुन्दर निरूपण हुआ है।

एक अन्य सन्त पं. द्वारकादास हैं जिनका जन्म स्थान बादली है। इनकी दो रचनाएं उपलब्ध हैं– एक 'सतगुरु भेद' तथा दूसरी 'सतगुरु कथा'।

एक अन्य सन्त ताराचन्द हैं जिनकी रचना 'अनुभव प्रकाश' 212 पृष्ठों की सुन्दर रचना है। इनके शिष्य रूष्प चन्द चौहान हैं जिनकी एक रचना 'सतगुरु की दात' उपलब्ध है।

पन्थ की संभावनाओं के विषय में डॉ. सूरजभान का कहनाहै कि 'सन्तों के सुपरिचित और प्रतिष्ठित सहज–योग, 'सुरत शब्द योग' को राधा स्वामी मत मानने वालों ने इसे 'अति सहज' कर दिया है। जिससे इनकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो गई है। हजारों और लाखों की संख्या में नाम दान किया जा रहा है। जो एक बार गुरु की शरण में आ गया, 'नाम' ले लिया, बस उसकी नैया पार। इतने 'हंसों' को गुरुजी का नाम जहजा मानसरोवर पहुंचा भी पाएगा इसमें संन्देह है।' इन दिनों 'पन्थ' का स्वरूप कुछेक 'मजहब' सा हो गया है। व्यक्तिगत साधना सामूहिक आचार होती जा रही है। साधना का स्थान औपचारिकताएं लेती जा रही हैं।[24]

हरियाणा के सिख सम्प्रदाय तथा कुछ अन्य पन्थ –

सिख धर्म के अनेक सम्प्रदाय अथवा पन्थ पाए जाते हैं। जिनमें उदासी, निर्मला, नामधारी, सहजधारी तथा केशधारी, सुधराशाही, सेवा पन्थी, अकाली, भगतापन्थी, गुलाब दासी, निरंकारी आदि प्रमुख हैं।

हरियाणा का दादू पन्थ –

इस पन्थ के हरियाणा के शताधिक छोटे–बड़े थाम्बे (दादू पन्थी गद्दियाँ) हें। दादू पन्थ्झी साधुओं को उनके देश, स्थान, वेशभूषा, सहन–सहन, जीवन–यापन, उपदेश–आदेश और प्रचार–प्रसार के ढंगों में विभिन्नता के कारणउन्हें छह मुख्य वर्गों में विभाजित किया जाता है, जो इस प्रकार हैं– 1. खालसा, 2. विरक्त, 3. दक्खनाथा स्थानधारी, 4. उत्तराधा स्थानधारी, 5. नागा एवं 6. तपसी।

हरियाणा के दादू पन्थी सन्त उत्तराधा अथवा उत्तराड़ी के सन्तों में माने जाते हैं। दादू जी के शिष्यों में बाबा बनवारी दास तथा हरदास का उल्लेख मिलता है, जिनका साहित्य उपलब्ध है। बाबा बनवारी दास का थाम्बा रतिया (हिसार) था। इनके नाम से केवल तीन पद या एक आरती मिलती है।[25] इनका उल्लेख राधो दास कृत भक्तमाला (अप्रकाशित) में पृष्ठ 191 पर आया है।

सन्त हरदास का उल्लेख भी भक्तमाल में सन्त बनवारी दास के भ्राता के रूप में आया है तथा इनका भजन स्थान 'रतिया का जंगल' बताया गया है।[26] इनकी वाणी के विषय में डॉ. सूरजभान का कहना है कि उन्हें इनकी हस्तलिखित बाणी मिली है। इसकी पुष्टि करने के लिए डॉ. साहब जयपुर स्थित दादू द्वार गए जहाँ उन्होंने दादू महासभा के विद्वान अध्यक्ष महन्त जीवानन्द से बातचीत की है। महन्त जी का कहना है कि उल्लिखित वाणी निश्चय ही दादू–शिष्य हरदास जी उत्तराधे की होनी

चाहिए।[27] हरदास जी की वाणी में 108 या 110 पद बतलाए गए हैं तथा कुछ रमैणियाँ भी। इनकी हस्तलिखित बाणी से एक छोटे पद की बानगी द्रष्टव्य है। यथा–

मेरी माई री अपनो पतिव्रत कीजै।।
केवल नइन के गुण किन गावै, जब लग जग में जीजै।।
सणि बेसीष समझि मति तेरी, आव घटै तन छीजै।।
कहै हरदास अवधि दिन आवै, राम रटणि कर लीजै।।[28]

दादू पन्थी सन्तों में उच्च कोटि के विद्वान सन्त दो ही हुए हैं– एक सुन्दर दास छोटे तथा निश्चल दास जी। इनकी प्रमुख गद्दी किड़हौली है। इनका प्रसिद्ध ग्रन्थ 'विचार सागर' यहीं लिखा गया था। स्वामी विकानन्द ने भी इस ग्रन्थ की सराहना करते हुए कहा है कि 'भारत के अन्तर्गत पिछली तीन शताब्दियों में इतना महत्त्वपूर्ण भाषा ग्रन्थ और देखने में नहीं आया।[29] इनकी कुछ अन्य रचनाएं जैसे 'वृत्ति प्रभाकर', 'मुक्ति प्रकाश', 'कठोपनिषद' की व्याख्या तथा एक वैद्यक ग्रन्थ भी बताया जाता है। सन्त दादू के शिष्य श्री सन्त दास, सन्तदास के शिष्य चतुरदास की लिखित 'श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्ध' (रचनाकाल संवत् 1692) भी उपलब्ध है।

दादू पन्थी संतों की साधना पद्धति सुरति शब्द योग ही है। गुरु का महत्त्व बहुत अधिक है। सन्त हरिदास का कहना है कि–

गोबिन्द बैठा गोप हुए, ज्यों कूँवे में नीर।
गुरु डोरी बिन हरिदास, जल पीवै नहीं बीर।।[30]

दादू पन्थ साहित्यिक दृष्टि से सर्वाधिक समृद्ध है। दादू पन्थ के हरियाणा में सैकड़ों थम्बे हैं। दादू पन्थी साधक लोक सेवा में रत रहते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में हरियाणा के विभिन्न निर्गुण सम्प्रदायों की साधना–पद्धतियाँ व्यक्तिमूलक रही हैं। अब सम्प्रदाय की श्रेष्ठता इसके अनुयायिओं की संख्या एवं संगठन विस्तार से ही जानी जाती है। संगठन में मूल सदाशयता के साथ कुछ विकृतियाँ भी अनिवार्यतः जुड़ती जाती हैं। बदलते समय के साथ भले ही हरियाणा के निर्गुण सम्प्रदाय अपने मूल को सुरक्षित न रख पाए हों, इनमें सदाशयता, मानवीयता एवं उदारता अब भी पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है जिनके अतिरिक्त विकास की आवश्यकता सामयिक सन्दर्भ में वांछनीय है। हरियाणा की शान्तिप्रियता, उदारता एवं आतिथ्य आदि मानवीय गुण, यहाँ के महान सन्तों की बाणी के प्रभाव का ही सुपरिणाम है। हरियाणा के जन–जीवन में पूर्व विवेचित निर्गुण सम्प्रदायों के महान सन्तों के उपदेशों की गहरी छाप एवंपैठ है।

संदर्भ –

1. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 134
2. वही, पृ. 148
3. वही, पृ. 148
4. वही, पृ. 148
5. हरदेदास कृत ह्दय प्रकाश, पृ. 27
6. जैत्राम जी की बाणी के अन्तर्गत दूलमदास की वाणी, पृ. 499
7. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 153
8. भक्तराम, जीवन चरित्र, पृ. 24
9. हरियाणा का सन्त साहित्य, पृ. 64
10. श्री जैतराम जी की बाणी, पृ. 179
11. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 54
12. महन्त जी से साक्षात्कार`क आधार पर
13. ग्रंथ साहब, संक्षिप्त जीवन लीला, पृ. 31
14. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा : आ. परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 472
15. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 213
16. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ .सूरजभान, पृ. 125

17. वही, पृ. 132
18. श्री मंगत राम कृत, 'समता विलास', पृ. 55
19. श्री परमानन्द कृत, परमानन्द ज्ञान आनन्द उदय सागर, पृ. 1954
20. बेनामी कृत, आत्मबोध, भरत प्रिटिंग प्रेस, अलवर, 2017वि.
21. हरियाणा का सन्त साहित्यः डॉ. सूरजभान, पृ. 239
22. आत्मबोध, पृ. 6
23. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा : आ. परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 801
24. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 211, 212
25. हरियाणा का सन्त साहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 156
26. श्री राधोदास कृत भक्तमाल, पृ. 270
27. हरियाणा का सन्तसाहित्य : डॉ. सूरजभान, पृ. 166
28. वही, पृ. 168
29. उत्तरी भारत की सन्त परम्परा, परशुराम चतुर्वेदी, पृ. 515
30. श्री हरिदास की वाणी, पृ. 22

पर्यावरण सुरक्षा : अस्तित्व के लिए चुनौती

– रॉयल दोसी
अतिथि व्याख्याता, भूगोल विभाग
गोविन्द गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा

प्रस्तावना :

डॉ० विद्यानिवास मिश्र का कथन है, "प्रकृति की संवेदनशीलता मानव को प्रभावित करती है, किन्तु जहाँ औद्योगिक विकास से अन्धे मानव ने प्रति की चुनौती को माना और इस पर विजय प्राप्त करने की इच्छा करने लगा, यहाँ से मानव और प्रकृति का संघर्ष हुआ, जिसका परिणाम सामने है। प्रकृति का सरंक्षण हम सब का पावन कर्त्तव्य है। हमें प्रकृति का उतना ही विदोहन करना चाहिए जिससे उसका सन्तुलन न बिगड़े। यदि मानव अब भी नहीं चेता तो हमारा विनाश निश्चित है।"

अतः यदि मानव प्रकृति के नियमों को समझकर, प्रकृति को गुरू मानकर उसके साथ सहयोग करता है और विशेष करके सब अवशिष्टों को प्रकृति को लौटाता है तो सृष्टि और मनुष्य स्वस्थ रह सकते हैं।

पर्यावरण सुरक्षा का अर्थ–

परि का अर्थ है– चारों ओर तथा आवरण का अर्थ है घेरे हुए। अर्थात् वह सब कुछ जो हमें चारों ओर से घेरे हुए हैं, पयावरण कहलाता है। इसी प्रकार सुरक्षा भी दो शब्दों के मेल से बना है। सुरक्षा सु का अर्थ है अच्छी प्रकार से तथा रक्षा का अर्थ है हिफाजत। अर्थात् अच्छी प्रकार से हिफाजत करना है। अतएव 'सुरक्षा' शब्द का तात्पर्य ष्पर्यावरण सुरक्षा' से तात्पर्य अपने चारों ओर के वातावरण की हिफाजत व शुद्धि से है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

सन् 1972 में सर्व प्रथम पर्यावरण की सुरक्षा के लिए स्टॉक होम में एक सम्मेलन हुआ जिसमें 113 देशों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में सर्व सम्मति से यह निर्णय लिया गया कि पर्यावरण प्रदूषण विश्व की जनसंख्या के लिए अत्यन्त घातक है तथा इसे रोकना अत्यन्त आवश्यक है।

सन् 1977 में पर्यावरण प्रदूषण को रोकने के लिए संविधान में 42वाँ संशोधन किया गया। इस संशोधन के आर्टीकल 48ए के अनुसार यह घोषणा की गई कि वह राज्य सरकारों का फर्ज है कि वे वातावरण को सुधारें तथा वनों व जंगली जीवों को सुरक्षा प्रदान करें। आर्टीकल 51ए (जी) के अनुसार यह भी घोषणा की गयी कि देश के सभी नागरिकों का भी कर्तव्य है कि वे पर्यावरण को सुरक्षित रखें।

नवम्बर 1980 में हमारे देश में भी यहाँ की केन्द्रीय सरकार ने पर्यावरण विभाग की अलग से स्थापना करके इस दिशा में पहल की। सन् 1981 में वायु प्रदूषण को रोकने के लिए भारत सरकार ने 'एअर एक्ट' पास किया तथा केन्द्र व राज्य स्तर पर अनेक बोर्डो की स्थापना की गयी।

विभिन्न बोडों द्वारा कुछ अन्य कार्य निम्न प्रकार हैं –

1. गोविन्द वल्लभ पन्त हिमालय पर्यावरण एवं विकास संस्था की स्थापना– केन्द्र सरकार ने सन् 1988 में अल्मोड़ा जिले में इस संस्था की स्थापना की।
2. राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड– सन् 1985 में इस बोर्ड की स्थापना हो सके। भारत सरकार द्वारा की गयी जिससे बंजर भूमि का ग्रामीण क्षेत्रों में विकास।
3. राष्ट्रीय वन तथा वन्य जीव सम्बन्धी नीति का निर्माण– सन् 1988 में केन्द्र ने इस नीति का निर्माण किया जिससे पर्यावरण में प्राकृतिक सन्तुलन बना रहे।
4. जैवमण्डल आरक्षित क्षेत्र– केन्द्र ने कुछ वनों तथा कुछ वन–क्षेत्रों को आरक्षित कर दिया है जहां शिकार नहीं किया जा सकता, जैसे–भरतपुर में पक्षियों का केन्द्र सन् 1992 से इन क्षेत्रों के लिए अनेक योजनाएं स्वीकृत हुई हैं।

5. हरित ईंधन योजना– एक अप्रैल सन् 1995 से सीसा रहित पेट्रोल का प्रयोग अनिवार्य कर दिया गया है। इस योजना को हरित ईंधन योजना अर्थात् ग्रीन फ्यूल स्कीम कहा गया है। इससे जहरीली गैसे वायुमण्डल में नहीं मिल पायेग।

6. अनुसन्धान, शिक्षा एवं प्रशिक्षण – वातावरण तथा वन से सम्बन्धित मन्त्रालय के सहयोग से अनेक संस्थाएँ एवं विश्वविद्यालय अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं और पर्यावरण शिक्षा एवं प्रशिक्षण का स्वरूप सामने आ रहा है।

7. गंगा कार्य योजना– प्रधानमन्त्री की अध्यक्षता में सन् 1985 में केन्द्रीय गंगा सत्ता की स्थापना की गयी है जो गंगा को स्वच्छ रखने की अनेक योजनाएँ क्रियान्वित करता है।

8. प्रदूषण नियन्त्रण कानूनों का निर्माण– कई कानून बनाए गए हैं। पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम, 1986 विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कानूनों का कड़ाई से पालन कराने के लिए 'केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड' तथा 'राज्य प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड' स्थापित किये गये हैं।

9. राष्ट्रीय पर्यावरण जागरूकता अभियान– पर्यावरण एवं वन मन्त्रालय अनेक संस्थाओं को जागरूकता अभियान चलाने के लिए वित्तीय सहायता देता है। सन् 1997–98 वित्तीय वर्ष में भारत सरकार ने 10.38 लाख की राशि स्वीकृति की थी।

10. अन्य प्रयास – केन्द्र व राज्य सरकारों ने कुछ अन्य प्रयास किये हैं जिसमें से कुछ उल्लेखनीय प्रयास ये हैं:

क. वनों के क्षेत्रफल का विकास।
ख. पर्यावरण सम्बन्धी पुरस्कारों की घोषणा ।
ग. जनजागरण।
घ. सचल पर्यावरणीय प्रयोगशाला।
ड़. उद्योग लगाने के पूर्व अनापत्ति प्रमाण–पत्र लेना।
च. पर्यावरण सम्बन्धी आन्दोलन (जैसे– चिपको आन्दोलन) ।

उपरोक्त के अतिरिक्त हमारे देश की संस्कृति व सभ्यता भी पर्यावरण–सुरक्षा के प्रति जागरुक करती हैं। हमारे वेदों व उपनिषदों में नदी, पर्वत, वायु, पृथ्वी, जल, सूर्य, चन्द्रमा तथा वृक्ष–सभी को वन्दनीय माना गया है। हमारे धर्म व संस्कृति भी इसी बात पर जोर देते हैं कि हम संयम व नियमों का जीवन व्यतीत करें। लेकिन यहां पर यह कहना अनुचित न होगा कि 'मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों–ज्यों दवा की' क्योंकि पर्यावरण की सुरक्षा के लिए समय–समय पर भारत सरकार द्वारा अनेक नियम बनाए तो जा रहे हैं लेकिन उनका पूर्णतया पालन नहीं हो रहा है। विश्व–व्यापी सहयोगों, पर्यावरण–शिक्षा एवं जन–कल्याण समितियों द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार के नियम बनाए तो जा रहे हैं लेकिन उनका पूर्णतया पालन नहीं हो रहा है जब तक प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण–सुरक्षा के लिए उपरोक्त नियमों की स्वयं पर निज रुचि लेकर, अपना नैतिक अधिकार समझते हुए ईमानदारी से पर्यावरण की सुरक्षा में भागीदारी नहीं करेगा तब तक पर्यावरण–सुरक्षा असम्भव है।

पर्यावरण सम्बन्धी पुरस्कार

क्रम सं.	**पुरस्कार वितरण**	**प्रारम्भ करने का वर्ष**
1.	इन्दिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार पर्यावरण के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान करने वाले संगठन या व्यक्ति को प्रतिवर्ष दिया जाता है ।इसमें एक लाख रूपये नकद, एक रजत ट्राफी और प्रशस्ति–पत्र प्रदान किया जाता है।	1987
2.	इन्दिरा गाँधी प्रियदर्शिनी वृक्षमित्र पुरस्कार इसमें पदक, प्रशस्ति–पत्र और पचास हजार रूपये नकद तक।	1986
3.	महावृक्ष पुरस्कार किसी विशेष प्रजाति के वृक्ष लगाने वाले को दिया जाता	1993–94

	है। इसमें पच्चीस हजार रूपये नकद और प्रशस्ति–पत्र दिया जाता है।	
4.	राजीव गाँधी पर्यावरण पुरस्कार यह पुरस्कार उन औद्योगिक इकाइयों को दिया जाता है, जिन्होंने स्वच्छ एवं प्रदूषण रहित प्रौद्योगिकी के विकास में उल्लेखनीय योगदान दिया है।	1993
5.	अन्य पुरस्कार–कुछ संस्थाएँ समय–समय पर अन्य पुरस्कारों की भी घोषणा करती हैं और नकद पुरस्कार अथवा प्रशस्ति–पत्र प्रदान करती है।	यथा समय

पर्यावरण सुरक्षा हेतु सुझाव–

यदि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण–सुरक्षा का संकल्प लेते हुए पर्यावरण–सुरक्षा मन से करना चाहता है तो उसे निम्न बातों का पालन करना चाहिए–

1. सौर–ऊर्जा (सोलर एनर्जी) का अधिक से अधिक उपयोग करना चाहिए।
2. सी० एन० जी० का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए क्योंकि वाहनों के धुएँ से सर्वाधिक प्रदूषण फैलता है।
3. पर्यावरण–सुरक्षा शिक्षा को पूर्ण रूप से ग्रहण करना चाहिए।
4. सरकार द्वारा बनाए गए नियमों का पूर्णतया पालन करना चाहिए ।
5. पर्यावरण–सुरक्षा के नियमों को प्रभावी बनाने के लिए होने वाले सम्बन्धित भ्रष्टाचार की जड़ों को उखाड़ना चाहिए ताकि नियमों का सुचारू रूप से संचालन हो सके।
6. पर्यावरण–सुरक्षा को अपना नैतिक कर्त्तव्य समझना चाहिए।
7. पर्यावरण सुरक्षा को मौलिक अधिकारों में सम्मिलित करना चाहिए।
8. पर्यावरण सुरक्षा के लिए जन साधारण को जाग्रत करना चाहिए।
9. वृक्षों के कटाव को रोकना चाहिए।
10. वृक्षारोपण करना चाहिए, क्योंकि पेड़ लगाना न केवल वायु को शुद्ध रखता है।

    बल्कि जमीन को भी कटने से बचाता है तथा भोजन, ईंधन व अन्य आवश्यक उपकरणों की भी पूर्ति करता है।
11. कागज, वृक्षों से बनता है अतः कागज का प्रयोग भी सोच–समझकर करना चाहिए।
12. दैनिक हवन, यज्ञ, पूजा करनी चाहिए क्योंकि हवन करने से वायु की शुद्धि तो होती ही है साथ ही साथ बीमारी तथा कीटाणुओं का विनाश भी होता है।
13. प्लास्टिक की थैली की जगह जूट, कपड़े के थैले का प्रयोग करना चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक पोलिथिन प्रदूषण को बढ़ाती है।
14. पानी का दुरूपयोग रोकना चाहिए, क्योंकि पानी हमारी प्रकृति की अमूल्य व सीमित सम्पदा है। इसका उपयोग हमें सोच–समझकर आवश्यकतानुसार ही करना चाहिए।
15. अपने आस–पास से खर–पतवार को जड़ से समाप्त करना चाहिए।
16. घर का कूड़ा गली में न फेंककर, कबाड़ी को ही देना चाहिए।
17. वर्षा के जल का संरक्षण कर उसे उपयोग में लाना चाहिए।
18. ऑक्सीटोसीन का प्रयोग बन्द करना चाहिए। प्रायः ऑक्सीटोसीन इन्जैक्शन दुधारी पशुओं को देते हैं तथा इसका प्रयोग फल व सब्जियों पर भी करते हैं,

    जो हर प्रकार से हानिकारक है
19. मांसाहार भी प्रदूषण को बढ़ाता है। अतः शाकाहारी बनने का संकल्प हो लेना चाहिए।
20. रासायनिक खाद व कीट नाशक, भूमि व पानी दोनों को प्रदूषित करते हैं। अतः इनके स्थान पर जैविक खाद का प्रयोग करना चाहिए।

21. सब्जियों व फलों के छिलके का उपयोग कूड़े में न फेंक कर, खाद बनाने में ही करना चाहिए।
22. डिस्पोजल वस्तुओं के स्थान पर काँच या धातु के बर्तनों का ही प्रयोग करना चाहिए।
23. मोर, हाथी, शेर, चीता, बाघ, तीतर, चील, सॉप जैसे पर्यावरण जीवों की सुरक्षा करनी चाहिए।
24. जल स्त्रोतों को साफ–सुथरा रखना चाहिए। उसमें रासायनिक अवशिष्टों प्रवेश को रोकना चाहिए।
25. धूम्रपान भी वातावरण को प्रदूषित करता है। अतः धूम्रपान का निषेध करना चाहिए।
26. प्रसाधन सामग्री जैसे–लिपिस्टिक, शैम्पू, नेल पॉलिश आदि में क्लोरोप्लोरो कार्बन जैसी हानिकारक गैस होती है, जो ओजोन पर्त में छेद करती है। अतरू इनका उपयोग बहुत ही सीमित मात्रा में करना चाहिए।
27. उत्सवों, त्यौहारों व समारोह के अवसरों पर बहुत कम मात्रा में पटाखों का प्रयोग करना चाहिए।
28. अपने घर के आस–पास व घर की खुली जगह में गमले व पेड़–पौधे लगाने से भी पर्यावरण की सुरक्षा होती है।
29. परम्परागत ईंधन जैसे लकड़ी व कोयला की अपेक्षा विद्युत व प्राकृतिक गैस का उपयोग करना चाहिए।
30. वातावरण में धुंआ व शोर–शराबा बहुत अधिक सीमा तक बढ़ा हुआ है। अतः इस पर भी नियन्त्रण करना चाहिए।
31. जो व्यक्ति पर्यावरण सुरक्षा के नियमों की अनदेखी करने में रिश्वत ले रहे हैं, उनको जड़ से उखाड़ना चाहिए।
32. जन–संख्या वृद्धि पर भी अंकुश लगाना चाहिए।

निष्कर्ष –

संक्षेप में निष्कर्ष रूप में मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि प्रत्येक प्राणी उपरोक्त नियमों का निज रुचि, निज अधिकार व नैतिक कर्तव्य समझते हुए ईमानदारी से पालन करता है तो पर्यावरण की सुरक्षा निश्चित रूप से सम्भव है। इसका एक बहुत बड़ा कारण लोगों में इन अधिनियमों के प्रति जागरूकता मैं कमी माना जा रहा है। इसका मतलब ये है कि पर्यावरण से संबंधित मानव भौतिक, सामाजिक एवं दैनिक आस्था की जागरूकता विकसित की जाये यदि आँखे बंद कर बिना सोचे समझे मनुष्य इसी सोपान पर चलता गया इस ओर ध्यान नहीं दिया गया तो ये सभी उपरोक्त वर्णित कथन पर्यावरण को एक मोड़ पर लाकर खड़ा कर देगा जहाँ साँस लेना भी मुश्किल हो जायेगा, पीने को स्वच्छ पानी नहीं मिलेगा।

अतः समय की पुकार है कि हमें समय रहते सम्भलना होगा, जन–जागृति एवं जन आंदोलन चलाना होगा जिससे तेजी से गिरते पर्यावरण को बचाया जा सके। पर्यावरण संबंधी जागरूकता ही सबसे मुख्य हथियार है। जो पर्यावरण संकट से उभार सकती है।

सन्दर्भ सूची–

1. डॉ० जी० एस० वर्माः पर्यावरण अध्ययन, लायल बुक डिपी, मेरठ ।
2. डॉ० भोपाल सिंह पर्यावरण शिक्षा, लायल बुक डिपो, मेरठ ।
3. Dr. V- B- Singh Environmental Studies, लायल बुक डिपो, मेरठ।
4. Dr- Rajendra Kumar - Environment Education, Laxmi Book Depot, Bhiwani.
5. डॉ० रामशकल पान्डे व डॉ० करूणा शंकर मिश्र भारतीय शिक्षा की समसामायिक समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2
6. पी० डी० पाठक–भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2

सरयूपारीण – ब्राह्मणोद्भव–विमर्श

डॉ. शक्तिधर नाथ पाण्डेय
प्रधानाचार्यचरः
लालगंज, मोहनगंज, प्रतापगढ़,

पुराकाल में अपनी महत्तपश्चर्या के बल पर ब्राह्मणों को त्रिकालज्ञ कहा गया था। "ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः" के अनुसार इन ऋषियों (ब्राह्मणों) ने वेद–मन्त्रों का साक्षात्कार किया था। संसार में सर्वप्राचीन वाङ्मय वेदों को माना जाता है। उन्हीं वेदों से समस्त ज्ञान–विज्ञान की उत्पत्ति मानी जाती है। आज जो भी वैदिक वाङ्मय (मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् एवम् षड्वेदाङ्ग–शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द) प्राप्त होता है वह समस्त वाङ्मय उन्हीं ज्ञानधन महर्षियों, ब्रह्मर्षियों की सारस्वत–साधना का चरमोत्कर्ष है।

ब्राह्मणों की इसी सत्ता महत्ता को वेद में "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्...." के द्वारा व्यक्त किया गया है। भक्त कवि तुलसीदास ने अपने 'रामचरितमानस' में अनेक स्थलों पर ब्राह्मणों के महत्त्व का निर्वचन किया है।

पूजिय विप्र सकल गुनहीना, सूद्र न गुनगन विविध प्रवीना।
विप्र वंस की अस प्रभुताई, अभय होय जो तुम्हइ डेराई।

इसी तथ्य को मनुजी महाराज ने अधोलिखित श्लोकों में प्रख्यापित किया है–

भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठाः, नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो, विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिस्तु कर्तारः, कर्तृषु ब्रह्मवादिनः।।

(मनुस्मृति, अध्याय–4)

ऐसे शत–शत गुणगणों से विभूषित ब्राह्मण आज भी सम्पूर्ण भारत के समस्त प्रान्तों में अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ समाज को नवीन दिशा देने हेतु मार्ग दर्शन कर रहे हैं। वन्दनीय ब्राह्मणों की उपजातियों में सरयूपारीण ब्राह्मणों के उद्भव के विषय में शास्त्र–वर्णानानुसार विचार किया जा रहा है।

ब्राह्मणों के सन्दर्भ में अनेक मिथ्या कल्पनायें सर्वसाधारण में ही नहीं, विद्वानों में भी प्रचलित तथा स्वीकृत हैं। जैसे कि कहा जाता है कि– त्रेतायुग में श्रीराम ने रावण वधानन्तर जब अश्वमेघ यज्ञ किया था, तो ब्राह्मण–वध के कारण किसी ब्राह्मण ने भोजन नहीं किया। हनुमान् जी ने कहा कि, ब्राह्मण–भोजन के बिना यज्ञ पूरा न होगा। अतः कान्यकुब्ज देश से सोलह ब्राह्मण–बालक लाकर, उपनयन संस्कार के साथ भोजन कराकर दक्षिणा के द्वारा सम्मानित किया गया। तदुपरान्त जब उन्हें उनके घर पहुँचाया गया तो उनके माता–पिता ने उनके दान–ग्रहण को लेकर घर से निकाल दिया। (क्योंकि कान्यकुब्ज देश में ब्राह्मणों के दान–ग्रहण की परिपाटी नहीं है।) वही बालक पुनः अयोध्या आये। उन्हें शरवार अर्थात बाण–निक्षेप के द्वारा परिसीमित भूमि पर बसाया गया।

पूर्वोक्त वचन किसी भी प्रामाणिक पुस्तक में नहीं मिलता है। यह सर्वथा अप्रमाणिक है अतः विद्वज्जन सम्मत नहीं है।

इसी प्रकार एक प्रसिद्धि यह भी है कि, गौड़ तथा द्राविड़ इन दो उपजातियों से दश उपजातियाँ तथा दश उपजातियों से चौरासी ब्राह्मणों की उपजातियाँ मानी जाती हैं। इनमें से केवल दश की प्रसिद्धि लोक में विशेष हे। अर्थात् पंचगौड़ और पंच द्राविड़। पंच गौड़ में सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, उत्कल

तथा मैथिल हैं। इनका निवास–स्थान विन्ध्य के उत्तर है। पंच द्राविड़ों में कर्नाटक, तैलंग, महाराष्ट्र, द्राविड़ और तैलंग हैं, जो विन्ध्य के दक्षिण प्रदेशों में निवास करते हैं। शेष चौरासी उप जातियाँ इन्हीं की शाखा मानी जाती हैं। इस धारणा के आधार–श्लोक इस प्रकार हैं–

गौड़–द्राविड़भेदेन तयाः भेदा दशस्मृताः।
चतुरशीति विप्राश्च दिग्भेदाश्च ततोभवन्।।
सारस्वताः कान्यकुब्जाः गौड़ उत्कल मैथिलाः।
पंच गौड़ा इति ख्याताः विन्ध्यस्योत्तरवासिनः।।
कर्नाटकाश्च तैलङ्गा महाराष्ट्राश्च द्राविडाः।
गुर्जराश्च पंचैते, द्राविडा विन्ध्य–दक्षिणे।।

इन श्लोकों के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है कि, लोक प्रसिद्ध होते हुए भी ये पूरी तरह अप्रमाणिक है। यहाँ सबसे बड़ी शंका यह होती है कि, क्या भारत में चौरासी से अधिक क्षेत्र ही नहीं है? और यदि हैं तो उन्हें किस भेद या उपजाति में रखा जायेगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि यह पूरी तरह काल्पनिक तथा निराधार है। ऐसा लगता है कि अपने को सर्वपूज्य बनाने हेतु गौड़ों और द्राविड़ों ने इन श्लोकों को सायास प्रचलित कराया है।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार तो भगवान् श्रीराम ने अपने आठ ऋत्विजों (वशिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय और कात्यायन) को शास्त्रानुसार भूभाग प्रदान किया था। जिनका उल्लेख रामायण में किया गया है।

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्ता ऋषिसत्तमौ।
वशिष्ठो वामदेवश्च, ऋषयश्च तथा परे।।
सुयज्ञोप्यथ जाबालिः, काश्यपोप्यथ गौतमः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुः तथा कात्यायनो द्विजाः।।

(वा.रामा. बाल. 7/15–16)

अब यह कहना कि– शरवार अर्थात् बाण निक्षेप के द्वारा जिन ब्राह्मणों को भगवान् ने जहाँ बसाया वह सरवार तथा वहाँ के ब्राह्मण सरवरिया हुए, यह नितान्त शब्दानुसारी कल्पना है।

इस सम्बन्ध में वाल्मीकि रामायण एवं महाभारत में कुछ उपाख्यान हैं, जिसके आधार पर सरयूपारीण ब्राह्मणों की उत्पत्ति पर विचार किया जा रहा है। वर्णनानुसार कैलास पर्वत से पूर्व, ब्रह्मा ने अपने मन से जिस उत्कृष्ट ब्रह्मसर का निर्माण किया है, उसी का नाम मानस–सर है। इस ब्रह्मसर के बहाव से जो नदी निकली और अयोध्या के समीप से बहती गयी, वह सरयू नाम से संसार में प्रसिद्ध है। इस समय इसका संगम, बिहार प्रान्त में गंगा नदी में होता है। इस संगम को मुनियों ने संसार का बन्धन काटने वाला महातीर्थ कहा है। इस संगम तक सरयू नदी के उत्तर भाग को शास्त्रों में 'सारव' कहा है।

कैलास पर्वते यत्र मनसा निर्मित परम्।
ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेदं मानसं सरः।।
तस्मात् सुस्राव सरसः, सायोध्यामुपगूहते।
सरः प्रवृत्ताः सरयूः पुण्य–ब्रह्म–सरश्च्युता।।
सा नदी सरयू–पुण्या, भीष्मसू सरयू युतम्।
संगमं भव–बन्धानां, छिन्दन्निगदुः परे।।

(वा.राम., बा.का. 23/58–60)

इसी तरह का वर्णन महाभारत में भी किया गया है। देविका और सरयू नदी के उत्तर किनारे को कोश तथा शास्त्र में भी क्रमशः दाविक और सारव कहा गया है। 'उत्तरो दाविक सारवौ' (अमरकोष)

अतएव देविका नदी के उत्तर की ओर रहने वाले ब्राह्मणों की दाविक तथा सरयू नदी के उत्तर भाग में उत्पन्न या रहने वाले ब्राह्मणों की 'सारव' संज्ञा हुई।

सरटवाश्चोत्तरे तीरे सारवम् लोक विश्रुतम्।
ततः सर्वे समुत्पन्नाः सारवाः सम्प्रकीर्त्तिताः।।
अनेन हेतुना विप्राः ब्राह्मणाः सुविनिर्मताः।
देविकायां सरय्वां च भवेद् दाविक सारवौ।।

(महाभारत वनपर्व, अध्याय 82)

अतः यह स्पष्ट हुआ कि, सरयूपारीण ब्राह्मणों का सरवार (बाण निक्षेप) से कोई सम्बन्ध नहीं है। हाँ इसका सम्बन्ध पवित्र सरयू नदी से अवश्य है। उसी के आस–पास इन पवित्र ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है। सरयू नदी पार गमन के कारण व्युत्पत्यनुसार (पारेभवः, पारीणः=पार+ख, अर्थात्–दूसरी पार रहने वाला) इन पूत–ब्राह्मणों को सरयूपारीण कहा गया है।

वर्तमान समय में सरयूपारीण ब्राह्मणों में तीन–तेरह का भेद करते हुए उत्तम, मध्यम, अधम की मनमानी व्याख्या करते हुए विवाहादि कार्यों में अपने भाईयों को ही अपमानित किया जा रहा है, जो सर्वथा निन्द्य है। वास्तव में प्रथम तीन पुनः तेरह तदनन्तर दश ऋषियों का वर्णन आता है। कुल मिलाकर छब्बीस (26) महर्षि उत्पन्न हुए और उन्हीं की सन्तान सरयूपारीण कहलाये। ये ब्राह्मण सम्पूर्ण देशों में अपने आचार–विचार, त्याग–तपश्चर्या, रीति–रिवाज के कारण अन्य ब्राह्मणों से उत्तम माने गये एवं सर्वमान्य हुए। इन छब्बीस (26) ऋषियों का वर्णन इस प्रकार है–

गर्गः गौतमश्चैव, शाण्डिल्यश्च पराशरः।
सावर्ण्यः कश्यपोऽत्रिश्च, भारद्वाजोऽथ गालवः।।
कौशिको भार्गवश्चैव, वत्सः कात्यायनोऽङ्गिराः।
शाङ्कृतो यामदग्न्यश्च षोडषैते प्रतिष्ठिताः।।

ये सोलह गोत्र सरयूपारीणों में प्रसिद्ध हैं। एक अन्य प्रसंग में दिये गये श्लोक में दश अन्य ऋषियों का भी वर्णन आता है।

गर्गः गौतमश्चैव, शाण्डिल्यश्च पराशरः।
सावर्णिः कश्यपो वत्सो भारद्वाजश्च कौशिकः।।
उपमन्युर्वशिष्ठश्च शांकृतो घृतकौशिकः।
गार्ग्यः कात्यायनश्चैव तथा स्याद् गर्दभीमुखः।।
अगस्त्यो भृगुर्भर्गश्च कुण्डिनश्च तथैव हि।

इस प्रकार छब्बीस ऋषि, महर्षि उत्पन्न हुए। इनमें (16) सोलह महर्षि प्रधान माने गये हैं। सोलह में भी तीन अपनी तपस्या के कारण अत्यन्त प्रधान हुए। वर्णनानुसार स्पष्ट विवरण अधोलिखित है।

तीन घर– (1) गर्ग (2) गौतम (3) शांडिल्य।

तेरह घर – (1) पराशर, (2) गालव, (3) कश्यप, (4) कौशिक, (5) भार्गव, (6) भारद्वाज, (7) सावर्ण्य, (8) अत्रि, (9) कात्यायन, (10) अङ्गिरा, (11) वत्स, (12) सांकृत्य, (13) जमदग्नि।

दस अन्य गोत्र – (1) कौण्डिन्य, (2) वशिष्ठ, (3) उपमन्यु, (4) मौनस, (5) कर्ण, (6) वर्तन्तु, (7) भृगु, (8) अगस्त, (9) कौशल्य, (10) उद्वाह, कृष्णात्रि, घृतकौशिक तथा गार्गेय ये मिश्रित गोत्र हैं।

पूर्व विश्लेषण से सर्वथा स्पष्ट है कि छब्बीस ऋषियों की सन्तानें परस्पर भाई–भाई हैं। उन ऋषियों की अपने–अपनी तपश्चर्या के कारण प्रधानता–अप्रधानता रही होगी, पर आज केवल वंशोद्भव के कारण पूज्यता–अपूज्यता का भाव सर्वथा हेय है। इस सम्बन्ध में एक ही तत्त्व ग्राह्य है, वह है,

महर्षियों की त्याग–तपस्या, जिसे ग्रहण करके हम पूज्यता का निराधार भाव रखने से संवार में उपहास के अतिरिक्त कुछ न मिलेगा। क्योंकि शास्त्रोक्ति है–

जातिरेका हि विप्राणां क्रिया तत्र गरीयसी।
यत्र–यत्र क्रिया श्रेष्ठा, तत्र–तत्र कुलीनता।।

स्त्री

हर क्षण,
स्त्री,
अपने सन्तान हेतु
माँ कहलाई

पिता हेतु
उनकी जिम्मेदारी पुत्री कहलाई

पति हेतु
पतिव्रता पत्नी कहलाई

कभी सखी तो
कभी प्रेमिका।
हर क्षण,
स्त्री
केवल संबंध मात्र कहलाई
बस,
अपने एकान्त में ही
स्त्री,
स्त्री कहला पाई।

– अपर्णा तिवारी

कठोपनिषद् में आत्मा का स्वरूप

डॉ. प्रमोद कुमार वैष्णव
आचार्य संस्कृत
हरिदेव जोशी राजकीय कन्या महाविद्यालय
बांसवाड़ा

भारतीय वाङ्मय में उपनिषदों का महत्वपूर्ण स्थान है। उपनिषदों में जो ज्ञान है उसे समस्त जगत आलोकित होता है। उपनिषद सभी के कल्याण के लिए है। उपनिषदों में छिपी ज्ञान राशि का सम्यक रुप से आलोडन करने से ही प्राप्त होती है और इस पर सभी का अधिकार है।

उपनिषद शब्द की व्युत्पत्ति उप एवं नि उपसर्ग पूर्वक सद् धातु एवं क्विप् प्रत्यय से हुई है जिसका अर्थ है ज्ञान प्राप्ति हेतु गुरु के समीप श्रद्धापूर्वक बैठना। गुरु में श्रद्धा रखते हुए उसके मुख से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह संप्रदाय क्रम से प्राप्त ज्ञान है। जिस गुरु से हम ज्ञान प्राप्त करें, उसका भी ज्ञान संप्रदाय पुरस्सर होना आवश्यक है। इसी गुरु परंपरा क्रम को संप्रदाय कहा जाता है।[1]

संपूर्ण ज्ञान होने पर भी गुरु की सेवा करते हुए गुरुमुख से ज्ञान प्राप्त करने की भारतीय परंपरा रही है।[2]केवल वेद ही नहीं वेदांग एवं अन्य विद्याओं का ज्ञान भी इसी संप्रदाय क्रम से प्राप्त करने की भारतीय परंपरा रही है।[3]

इससे विद्या फलवती भी होती है। उपनिषदों में दिव्य ज्ञान का अजस्र स्रोत है जिस अध्यात्म मार्ग का कोई भी पथिक प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उपनिषदों की संख्या 1008 तक कही गई है किंतु प्रमाणिक उपनिषद आदि शंकराचार्य द्वारा वीरचित भाष्य के आधार पर 10 प्रमुख कह गए हैं।

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डकमाण्डुक्य तैतिरिः। एतरेयं च छान्दोग्यं वृहदारण्यकं दशः।।[4]

कृष्ण यजुर्वेद की कठ शाखा से संबंधित कठोपनिषद अपने आत्मविश्वास ज्ञान के लिए प्रख्यात है इस उपनिषद में दो अध्याय हैं एवं प्रत्येक अध्याय में तीन–तीन वल्लियां है। **तदु नात्येति कश्चन** यह इस उपनिषद का उद्घोष है।[5] इस उपनिषद के आरंभ में वाजश्रवा के सुपुत्र उद्दालक एवं उसके पुत्र नचिकेता का वर्णन है। ऋषि उद्दालक ने विश्वजीत नमक यज्ञ में अपना सर्वस्व दान कर दिया था।[6] उन्होंने वृद्ध गायों का भी दान किया नचिकेता ने सोचा कि ऐसी गायों का दान करने से अनंदा नामक अधम लोक की प्राप्ति होती है।[7] बालक ने विचार किया कि पिताजी मुझे भी किसी को देंगे। उत्सुकता वर्ष तीन बार पूछने पर पिता ने क्रोधित होकर कहा कि मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूं।[8] पिता के वचन को सत्य करने के लिए नचिकेता यमराज के पास गए । नचिकेता ने तीन रात्रि तक बिना अन्न जल ग्रहण किये यमराज की प्रतीक्षा की जिससे प्रसन्न होकर यमराज ने नचिकेता से तीन वर मांगने के लिए कहा।[9]

नचिकेता ने प्रथम वर यह मांगा कि मेरे पिता प्रसन्नचित एवं क्रोध रहित हो जाए।[10] प्रथम वर की प्राप्ति के पश्चात दूसरे वर में बालक नचिकेता ने स्वर्ग की साधनभूत अग्निविद्या को जानना चाहा।[11] नचिकेता को अग्नि विद्या का उपयुक्त अधिकारी पाकर यमराज ने प्रसन्न होकर विस्तृत ज्ञान प्रदान किया एवं उसकी अद्भुत स्मरण शक्ति से प्रभावित होकर एक अतिरिक्त वरदान प्रदान करते हुए कहा कि यह अग्नि तुम्हारे नाम से ही प्रसिद्ध होगी।[12] नचिकेता ने तीस रे वरदान के रूप में यमराज से पूछा कि मृत्यु के पश्चात आत्मा की क्या गति होती है कुछ का मानना है कि यह होती है और कुछ का मानना है कि यह नहीं होती है इस विषय में मैं आपसे ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूं।[13]

आत्मज्ञान के वास्तविक अधिकारी की परीक्षा हेतु यमराज ने नचिकेता को अनेक भौतिक प्रलोभन दिखाएं, साथ में यह भी कहा कि यह विषय अत्यंत गुढ़ है, देवताओं को भी इस विषय में संदेह हुआ था, यह आसानी से जानने योग्य नहीं है, इसे छोड़कर अन्य कोई वरदान मांग ल[14] नचिकेता अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हुए कहा कि मनुष्य वित्त से कभी तृप्त नहीं हो सकता मैं तो इन सभी सांसारिक वस्तुओं को तुच्छ मानता हूं एवं इस आत्मज्ञान को प्राप्त करना चाहता हूं।[15] कठोपनिषद के इस प्रसंग

से यह भी स्पष्ट होता है कि ज्ञान प्राप्ति के लिए अधिकारी का निश्चय करना आवश्यक है। मीमांसकों ने विधि विभाग के अंतर्गत अधिकारी का भी विश्लेषण किया है।[16] अनधिकारी को दिया गया ज्ञान फलदायक नहीं होता है। ज्ञान प्रदाता एवं ग्रहीता दोनों इष्टप्राप्ति नहीं कर पाते हैं। जब यमराज ने सम्यक परीक्षण कर पाया कि नचिकेता सांसारिक सुखों से विरक्त रहते हुए आत्मज्ञान का अधिकारी है तो उन्होंने सर्वप्रथम आत्मज्ञान प्राप्ति के श्रेय एवं प्रेय मार्गों का विवेचन किया।[17]

अविद्या से ग्रस्त मनुष्य का वर्णन करते हुए बताया कि ऐसे लोग जो अपने को बुद्धिमान एवं पंडित मानते हैं यह नेत्रहीन होते हैं जैसे एक नेत्रहीन दूसरे नेत्रहीन को मार्ग नहीं दिखा सकता,वैसी ही उनकी स्थिति है।[18] इसी क्रम में प्रणव के महत्व का भी वर्णन किया गया है।[19] आत्मा के स्वरूप का विस्तार से विवेचन करते हुए यमराज कहते हैं कि

न जायते म्रियते वा विपश्चिनायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों ने हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[20]

इस चैतन्य स्वरूप आत्मा का ना तो जन्म होता है एवं ना ही मृत्यु होती है। ना तो आत्मा की उत्पत्ति किसी अन्य से होती है एवं ना ही किसी अन्य की उत्पत्ति आत्मा से हो सकती है यह आत्मा अजन्मा है, शाश्वत है, प्राचीन है । शरीर के नष्ट होने पर भी यह नष्ट नहीं होता

आत्मा के स्वरूप का विवेचन करते हुए यमराज कहते हैं –

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विज्ञानीयो नायं हन्ति न हन्यते।।[21]

जो मनुष्य इस अविनाशी नित्य आत्मा को मरने वाला मानता है एवं जो मनुष्य से मरा हुआ मानता है, ये दोनों ही इस आत्मा को नहीं जानते हैं, क्योंकि यह ना मरता है एवं ना ही मारा जाता है।

अणोरणीयान्महतोमहीयान्नात्मास्य जन्तोर्निहतं गहायाम्।[22]

आत्मा का स्वरूप सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर है एवं महान से भी महत्तर है । यह आत्मा जीव की ह्रदय रुपि गुफा में स्थित है । इसका दर्शन वही कर पता है जो कामनाओं से रहित है, जो हर्ष – विषाद से रहित है। परमात्मा की सत्ता का विश्वास करते हुए शांत एवं स्थिर रहते हैं, वही इसे जान सकते हैं। इसके विपरीत स्वभाव वाले मनुष्य के लिए आत्मा अलभ्य है। आत्मा का ऐसा ही वर्णन श्रीमद्भगवद् गीता के द्वितीय अध्याय में भी प्राप्त होता है।[23]इस आत्मा की यह भी विशेषता है कि यह निश्चल होने पर भी दूर तक जा सकता है सोते हुए भी सर्वत्र गमन कर सकता है –

अशरीरं शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थियम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरों ने शोचति।।[24]

यह आत्मा समस्त पार्थिव शरीर में रहते हुए भी शरीर रहित है, समस्त अस्थिर पदार्थ में व्याप्त होते हुए भी सदा स्थिर है, इस महान एवं विभु आत्मा को जो जान लेता है वह शोक से तर जाता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुधा श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।[25]

आत्मा के स्वरूप को जानने के लिए न तो प्रवचन की आवश्यकता है, न विशिष्ट बुद्धि की आवश्यकता है, एवं न ही अनेक विधाओं के श्रवण की आवश्यकता है। इसका साक्षात्कार उन्हीं को हो सकता है जो इसकी प्राप्ति के लिए व्याकुल है अर्थात जिन्हें आत्म दर्शन के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। जिसको यह आत्मा स्वयं स्वीकार कर लेता है तथा जिसके पास अपना यथार्थ स्वरूप प्रकट कर देता है वह सहज में आत्म दर्शन कर लेता है। जो पाप कर्मों में लिप्त है, शम –दमादि से रहित है, चित्तवृत्ति का निरोध नहीं कर सकते और मानसिक शांति से रहित है, ऐसे मनुष्य वास्तविक ज्ञान से दूर रहते हैं। आत्मज्ञान के लिए आडंबर एवं पांडित्य की आवश्यकता नहीं होती, ना ही एक कुशल तार्किक की। जो क्रोधादि दुर्गुणों से दूर है, जिनको इंद्रियां अपने वश में नहीं कर सकती, ऐसे सच्छास्त्रों का ज्ञान रखने वाले मनुष्य प्रज्ञान से आत्म दर्शन कर पाते हैं।

प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।[26]

यमराज ने शरीर को रथ एवं आत्मा को राथी की उपमा देते हुए अत्यंत सुंदर व्याख्या की है–

आत्मानंद रथिनं विद्धि शरीरंरथमेव तु।
बुद्धिं तु हार्दिक विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः।।[27]

यह आत्मा बुद्धि से भी परे है –

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्थाअर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनस्तुपराबुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः।।[28]

इसी तथ्य को शब्दांतर में श्रीमद्भगवतगीता में भी कहा गया है।[29]

आत्मा को एक तत्व को बताते हुए यमराज ने कहा कि –

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रुपं रुपं प्रतिरुपो बभूव।
आत्मा सर्वभूतान्तरात्मा रुपं रुपं प्रतिरुपो बहिश्च।।[30]
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रुपं रुपं प्रतिरुपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रुपं रुपं प्रतिरुपो बहिश्च ।।
वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥
सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः न लिप्यतेचाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥

समस्त प्राणियों के अंदर वास करने वाला आत्मा एक ही है जो इस प्रकार आत्मा को जानते हैं वह शाश्वत सुख और शांति को प्राप्त करते हैं –

तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।[31]

आत्मा की विशेषताओं के वर्णन में कहा गया है –

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।[32]

अन्य उपनिषदों में भी आत्मविष्यक वर्णन प्राप्त होते हैं एतरेयोपनिषद के प्रारंभ में कहा गया है कि सर्वप्रथम सृष्टि में आत्मा ही की ही सत्ता थी आत्मा से अतिरिक्त कुछ नहीं था।[33] वृहदारण्यकोपनिषद् में भी यही कहा गया है।[34] आत्मा विषयक दृष्टि, श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन आवश्यक है।[35] आत्मा अंतर्यामी है एवं अमृतस्वरूप है।[36] वास्तव में आत्मा के स्वरुप ज्ञान के बिना अज्ञान की निवृत्ति असंभव है। आत्मज्ञान के पश्चात किसी सांसारिक वस्तु की कामना नहीं रहती है। आत्मा के निज स्वरूप में स्थित होने को मुक्ति कहते हैं। आत्मा में जड़ता नहीं है यह सत् चित् एवं आनंद स्वरूप है। यह आत्मा नित्य, सर्वगत, कुटस्थ एवं निर्मल है। मनुष्य शरीर में आत्मा की सत्ता रहने पर भी उसका स्वरूप ज्ञान हो नहीं पाता। केवल निर्मल बुद्धि से ही आत्मा का अनुभव किया जा सकता है। आत्मा में कोई विकार नहीं है, इसका बोध बुद्धि के द्वारा नहीं हो सकता है। आत्मा बुद्धि से परे है। मन, बुद्धि एवं इंद्रियों को आत्मा प्रकाशित करता है। मन, बुद्धि एवं इंद्रियों में कोई समर्थ नहीं है जिससे आत्मा प्रकाशित हो। अतैव श्री मद्भगवतगीता में कहा गया है कि –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अअनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्।।[36]

इस प्रकार हम संक्षेप में यह कह सकते हैं कि कठोपनिषद में आत्मज्ञान का सूक्ष्म विवेचन किया गया है । इस आत्मज्ञान के द्वारा मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है ।

1. याज्ञवल्क्य शिक्षा –श्लोक 172
2. याज्ञवल्क्य शिक्षा –श्लोक 230[1] अमोघानंदिनी शिक्षा –श्लोक 119
3. वैदिक साहित्य का इतिहास
4. कठोपनिषद् –2.2.8
5. कठोपनिषद् –1.1.1
6. कठोपनिषद् –1.1.3
7. कठोपनिषद् –1.1.4
8. कठोपनिषद् –1.1.9
9. कठोपनिषद् –1.1.10
10. कठोपनिषद् –1.1.13–15
11. कठोपनिषद् –1.1.16
12. कठोपनिषद् –1.1.20
13. कठोपनिषद् –1.1.21
14. कठोपनिषद् –1.1.27
15. अर्थसंग्रह – अधिकारीविधिप्रकरण
16. कठोपनिषद् –1.2.1
17. कठोपनिषद् –1.2.5
18. कठोपनिषद् –1.2.15–17
19. कठोपनिषद् 1.2.18
20. कठोपनिषद् 1.2.15
21. कठोपनिषद् 1.2.20
22. श्रीमद्भगवद्गीता 2.19–20
23. कठोपनिषद 1.2.21
24. मुण्डकोपनिषद 3.2.3
25. कठोपनिषद 1.2.24
26. कठोपनिषद् –1.3.3–4
27. कठोपनिषद 1.3.10
28. श्रीमद्भगवतगीता 3.42
29. कठोपनिषद 2.2.9–11
30. कठोपनिषद 2.2.12
31. कठोपनिषद 2.2.13
32. एतरेयोपनिषद् –1.1.1
33. वृहदारण्यकोपनिषद्–1.2.1 / 1.2.30
34. वृहदारण्यकोपनिषद्–2.4.5
35. वृहदारण्यकोपनिषद् 3.7.7–31
36. श्रीमद्भगवतगीता 6.5–6

असाध्य वीणा से अज्ञेय का आधुनिक सन्दर्भ

नरेन्द्र पानेरी
सहायक आचार्य,
श्री गोविंद गुरू राजकीय महाविद्यालय बांसवाड़ा
सम्बद्ध गोविंद गुरु जनजातीय विश्वविद्यालय, बांसवाड़ा

सारांश

''असाध्य वीणा'' इस उपन्यास में वास्तव में अज्ञेय का समकालीन संदर्भ है, जो उनके साहित्यिक प्रभाव और प्रभाव को उजागर करता है। उपन्यास विभिन्न विषयों की पड़ताल करता है, जिसमें साहित्य का प्रभाव और समाज पर लेखकों का जीवन भी शामिल है। अज्ञेय, हिंदी साहित्य के एक प्रमुख व्यक्ति होने के नाते, साहित्यिक परिदृश्य पर अपने गहरे प्रभाव के कारण अक्सर समकालीन लेखकों के लिए एक संदर्भ बिंदु बन जाते हैं। कविता में 'असाध्य वीणा' की याद जब आती है तो असाध्य को साधने की एक कोशिश के रूप में ज्यादा आती है। हमारा समय जितना जटिल है,उससे उबरने के तरीके भी उसी जैसे हों,ये जरूरी है। पर जहां दर्प है,वहीं हार है। जो स्वयं को कलावंत मानता है उसकी सारी कलाएं धरी की धरी रह जाती हैं। वे उसके काम नहीं आती। वह भरी सभा में लज्जित;अगर उसमें थोड़ी भी लज्जा बची हो तोद्ध होता है। यह हार दरअसल उसकी अयोग्यता से उपजी है और अयोग्य वह अपने को मानने को तैयार नहीं है। समस्या यहीं से शुरू हो जाती है। यह कविता बताती है कि अपने अहं का त्याग किए बिना सफलता असंभव है। दर्प को अंततः टूटना ही होता है।

भूमिका

असाध्य वीणा अज्ञेय जी की एक लम्बी कविता है। इस कविता की रचना उन्होंने सन् 1957–58 के जापान प्रवास के बाद 18–20 जून 1961 में अल्मोड़ा के कॉटेज में 321 पंक्ति वाली यह लंबी कविता लिखी थी। यह कविता उनके काव्य संग्रह 'आँगन के पार द्वार' में संकलित है, जो 1961 में ही प्रकाशित हुआ था।

असाध्य वीणा कविता एक चीनी–जापानी लोक कथा पर आधारित है। इस कविता की मूल कहानी 'आकोकुरा' की पुस्तक 'द बुक ऑफ टी' में 'टेंमिंग ऑफ द हार्प' शीर्षक में संकलित है। इसकी मूल कथा इस प्रकार है– 'लूंगामिन' नामक घाटी में एक विशाल किरी वृक्ष था। जिसमे किसी जादूगर ने एक वीणा का निर्माण किया। अनेक वाद्य कलाकार इस वीणा को बजाने के लिए कोशिश करके हार गए, पर इस वीणा को नहीं बजा सके। इसलिए इसका नाम 'असाध्य वीणा' पड़ गया। अंत में 'बीनकरों' का राजकुमार 'पीवो' ही इस वीणा को साध पाता है। उसने वीणा से ऐसी तान छेड़ी कि उसमे से तरह–तरह की स्वर लहरियाँ फूट पड़ी कभी उसमे से प्रेम गीत निकलता था तो कभी उसमे से युद्ध का राग सुनाई पड़ता था। इस प्रकार की कथा बौद्ध धर्म के 'जेन' या 'झेन' सम्प्रदाय में भी प्रचलित है जो एक 'ध्यान' सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदाय का मानना है कि सत्य का ज्ञान ही वास्तव में आत्मज्ञान है। 'तावो' वासियों में भी इस प्रकार की कथा प्रचलित है।

अज्ञेय जी ने इस कथा का भारतीयकरण करते हुए वर्णन किया है कि किरीटी नामक वृक्ष से वज्रकीर्ति नामक साधक ने ऐसी वीणा का निर्माण किया जिसे राजदरबार में कोई भी कलावंत बजा नहीं सका। अंततः इस असाध्य वीणा को केशकम्बली प्रियंवद नाम का साधक ही इसे साध पाता है। जब यह वीणा बजती है तब दरबार में उपस्थित राजा–रानी और प्रजाजनों को अपने–अपने व्यक्तित्व और भावनाओं के अनुसार उन्हें अलग–अलग संगीत सुनाई देता है। तुलसीदास जी ने कहा था। "जाकि रही भावना जैसी प्रभू मूरत देखी तिन तैसी।" इससे यह अर्थ निकलता है कि व्यक्ति को सत्य की उपलब्धियाँ अपने व्यक्तित्व और अपने वैचारिक स्तर के अनुरुप ही हो पाता है। असाध्य वीणा पूर्णतः प्रतीकात्मक कविता है। किरीटी तरु परम सत्य का प्रतीक है। उससे बनाई गई वीणा सत्य की उपलब्धि का साधन मार्ग है और वीणा से निकलने वाला संगीत परमात्मा की अभिव्यक्ति है। यह सत्य प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भावनाओं के अनुसार उपलब्ध होता है।

वस्तुतः असाध्य वीणा जीवन का प्रतीक है, हर व्यक्ति को अपनी भावना के अनुरूप ही उसकी स्वर लहरी प्रतीत होती है । व्यक्ति को अपनी भावना के अनुरूप ही सत्य की उपलब्धि होती है तथा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों को कला की प्रतीति भिन्न–भिन्न रूप में इसलिए होती है, क्योकि उनकी आन्तरिक भावनाओं में भिन्नता होती है । इससे यह भी ध्वनित होता है कि कला की विशिष्टता उसके अलग–अलग सन्दर्भों में , अलग–अलग अर्थो में होती है।

'असाध्य वीणा' को वही साध पाता है जो सत्य को एवं स्वयं को शोधता है या वो जो परिवेश और अपने को भूलकर उसी के प्रति समर्पित हो जाता है ।

यह वीणा कोई साधारण वीणा न थी, अपितु इसे तो अनेक अनुभवी, ज्ञानी, साधक भी साधने में असफल रहे थे, इसीलिए सम्भवतः इसे 'असाध्य वीणा' की संज्ञा दी गयी। सेवकों ने वह वीणा साधक अर्थात् प्रियवंद के सम्मुख रख दी। वस्तुतः एक सच्ची साधना लक्ष्याभिमुख पर ही आधारित होती है। इस सच्ची साधना के अभाव में ही अनेक साधक इस वीणा को झंकरित करने में असफल रहे। अब सम्स्त सभाजनों की उत्सुक आँखों ने पहले उस अद्भूत वीणा को देखा और फिर उसे साधने का प्रयास करने वाले साधक प्रियवंद को देखा।

लघु संकेत समझ राजा का
गण दौडे। लाये असाध्य वीणा
साधक के आगे रख उसको, हट गये।
सभी की उत्सुख आँखें
एक बार वीणा को लख, टिक गयीं,
प्रियंवद के चेहरे पर।

राजा कहता है कि इस अति प्राचीन वीणा के सम्पूर्ण इतिहास से तो हम भी अनभिज्ञ है, किन्तु सुनने में यहीं आया है कि इस अतिविशिष्ट वीणा का निर्माण व्रजकीर्ति द्वारा सम्पन्न हुआ है। व्रजकीर्ति ने दैवी मन्त्रों से शुद्धित, अनायास प्रदत्त अलौकिक गुणों के अखण्ड कोष, अति प्राचीन किरीट तरु के काष्ठ से इसे गढ़ा था।

यह वीणा उत्तरखाण्ड के गिरि–प्रान्तर से
घने वनों में जहाँ तपस्या करते हैं व्रतचारी–
बहुत समय पहले आयी थी।
पूरा तो इतिहास न जान सके हमः
किन्तु सुना है
वज्रकीर्ति ने मन्त्रपूत जिस
जिस प्राचीन करीटी–तरु से इसे गढ़ा था–

फिर कथा–विन्यास पर ध्यान दें – प्रियवंद केशकम्बी का आगमन, राजा का स्वागत, आशयज्ञापन, असाध्य वीणा का प्रियंवद के समक्ष रखा जाना, वीणा का इतिहास–वृत्त, किरीटी तरू से वज्रकीर्ति द्वारा निर्माण, किरीटी तरू का वर्णन, वीणा की असाध्यता का उल्लेख, सच्चे स्वरसिद्ध की प्रतीक्षा, केशकम्बली का साधना–प्रयत्न, प्रभाव, प्रियवंद का उत्तर, प्रस्थान।

कविता जो मिथकीय वातावरण बनाती है उसमें देखें किरीटी तरू की ऊँचाई का वर्णन : (किरीटी तरू की व्यंजना : मुकुटधारी, वृक्षराज)

उसके कानों में हिमशिखर रहस्य कहा करते थे अपने
कंधों पर बादल सोते थे–
जड़ उसकी जा पहुंची थी पाताल–लोक
उसकी गंध प्रवण शीतलता से फण टिका नागवासुकि सोता था
देखें वीणा को संभालने–साधने का यह ढंग :
केशकम्बली गुफागेह ने खोला कम्बल।
धरती पर चुपचाप बिछाया।
वीणा उस पर रख, पलक मूंदकर, प्राण खींच

करके प्रणाम
अस्पर्श छुअन से छुए तार

वीणा का बजना क्या है जैसे वृक्ष का परिवेश उभरता हो। स्मृतियों के साथ! एक–एक झंकृति के लिए अत्यंत सतर्क बिम्ब योजना है : 'पन्थी के घोड़े की टाप अधीर / अचंचल धीर थाप भैसों के भारी खुर की /कृबटिया पर चमरौंध की रूंधी चाप सातवें के लिए द्य और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुल–छुल– ।'

प्रियवंद के लिए वीणा बजाने की प्रक्रिया में अहं का विलयन अनिवार्य हैः

मुझे स्मरण है –
पर मुझको मैं भूल गया हूँ :
'असाध्य वीणा' में वीणावादक का विलक्षण प्रभाव कुछ ऐसा :
डूब गये सब एक साथ।
सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।

महत्वपूर्ण यह है कि अपने को भूलकर ही प्रियवंद को स्वर–सिद्धि मिली। हम अज्ञेय को पढ़ते हुए कुछ प्रयोगों की विशिष्टता पर ध्यान दें, यह आवश्यक है – जैसे :

करके प्रणाम
अस्पर्श छुअन से छुए तार

'स्पर्श' वादन–प्रक्रिया का अंग है। यहाँ यह नहीं कहा जा रहा है कि तार छुए' नहीं गए। कहा जा रहा है कि स्पर्श (तार को काटने की–सी अर्थ–ध्वनि) का प्रयत्न नहीं किया गया। जैसे, अपने आप बज उठी वीणा।

इस तरह 'असाध्य वीणा' को पढ़ते हुए हम अंज्ञेय के आधुनिक भाव–बोध और संवेदना को भाषा में पूर्णतर अभिव्यक्ति पाते हुए देख सकते हैं। ये कविताएँ हर बार संपूर्ण पाठ की माँग करती हैं।

आधुनिक हिंदी साहित्य में अज्ञेय की पहचान सूक्ष्म कलात्मक बोध, व्यापक जीवन अनुभूति, समृद्ध कल्पना शक्ति एवं अभिव्यंजना कौशल से युक्त साहित्यकार के रूप में होती है। छायावाद के पश्चात जब प्रगतिशील कविता की लौ शिल्पहीनता एवं राजनीतिक प्रतिबद्धता के कारण मद्धिम हो रही थी, अज्ञेय ने 'तार–सप्तक' के माध्यम से हिंदी कविता में नया प्राण फूंकने की कोशिश की।

अज्ञेय के जीवन दर्शन पर भारतीय वेदांत व मानववाद का प्रभाव तो है ही बौद्ध धर्म की करुणा दृष्टि में भी उनकी आस्था है। वह अनास्थावादी व अस्तित्त्ववादी नहीं हैं। भारतीय जीवन दृष्टि में उनकी गहरी आस्था है। अज्ञेय के जीवन दर्शन का केंद्र बिंदु 'मनुष्य' है और जीवन का सबसे बड़ा मूल्य है–'मानवीय स्वतंत्रता'। इसी कारण वह मार्क्सवादी जीवन दर्शन के प्रति नकार की दृष्टि रखते हैं।

'असाध्य वीणा 'सृजन तत्व की व्याख्या करते समय चार मुख्य आयामों पर प्रकाश डालती है– सृजन की अर्हता, सृजन की प्रक्रिया, सृजनात्मकता का स्वरूप एवं सृजन का प्रभाव। अहंकार शून्यता व आत्मनिवेदन का भाव ही प्रियंवद को सृजनात्मकता के लिए अर्ह बनाता है। जिस वीणा को' कोई ज्ञानी गुणी आज तक इसे न साध सका', उसी को

'वाद्य उठा साधक ने गोद रख लिया,
धीरे धीरे झुक उस पर, तारों पर मस्तक टेक दिया।'

सृजनात्मकता की प्रक्रिया में आत्मनिवेदन का भाव तो है ही–

'सघन निविड़ में वह अपने को,
सौंप रहा था उसी किरीटी तरु को''

साथ ही यह प्रक्रिया व्यक्तिगत है। साधना के चरमोत्कर्ष की स्थिति में वह नितांत अकेला ही है–

भूल गया था केशकम्बली राज सभा को
कंबल पर अभिमंत्रित एक अकेलेपन में डूब गया था

जिसमें साक्षी के आगे था
जीवित वही किरीटी तरु
'संबोधित कर उस तरु को, करता था
नीरव एकालाप प्रियंवद'

और फिर, उससे ऐसा संगीत अवतरित हुआ जो अपने स्वरूप में ब्रह्मा के साक्षात्कार की तरह होता है।

''अवतरित हुआ संगीत
स्वयभूं
जिसमें सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय''

इस सृजन का प्रभाव सभी पर अलग–अलग पड़ता है। साधना से उद्भूत संगीत से राजा–रानी को क्रमशः अपने जीवन को धर्म भाव से उत्सर्ग करने और प्रेम को जीवन में सर्वश्रेष्ठ स्थान देने की प्रेरणा प्राप्त हुई तो उपस्थित श्रोताओं को भी अपना–अपना काम्य मिल गया–

''डूब गए सब एक साथ
सब अलग–अलग एकाकी पार तिरे।''

अज्ञेय का मानना है कि व्यक्ति की पूर्णता की अनुभूति को प्राप्त कराने के लिए ज्ञान विज्ञान पर्याप्त नहीं है क्योंकि जितना ही तकनीकी का फैलाव होता जा रहा है, मनुष्य उतना ही विवश होता जा रहा है, उसकी संवेदना उतनी ही क्षरित होती जा रही है। इसके लिए जीवन के प्रति समर्पण चाहिए।

'असाध्य वीणा' में भले ही रहस्यवादी भावना लक्षित होती हो किंतु यह भी स्पष्ट है कि उनका रहस्यवाद मध्यकालीन सिद्धों–नाथों–संतों के रहस्यवाद से एकदम अलग है। सन 1939 के' हंस' अंक में अपनी 'रहस्यवाद' शीर्षक कविता में वह कहते हैं कि' मरे रहस्यवाद ईश्वर की ओर नहीं है। 'यह रहस्यवाद सीमित अणु में विराट की शक्ति समा लेना चाहता है। अज्ञेय का भाव–सत्य पर आधारित रहस्यवाद 'सत्य से साक्षात्कार' है। इसीलिए इसे 'नव्य–रहस्यवाद' कहा गया। जिस तरह निराला का विद्रोही तेवर आगे चलकर भक्ति में। किन्तु अज्ञेय अंतर्मुखी नहीं होना चाहत। वे जीवन की पूर्णता का अनुभव करके अधिक संयत ऊर्जा एवं रचनात्मकता से युक्त हा`कर जीवन में प्रवेश करना चाहते हैं। तात्पर्य यह है कि जीवन की पूर्णता को समर्पण से, साधना से अनुभव करके यदि व्यक्ति पुनः जीवन में प्रवेश करें तो वह अधिक स्वस्थ एवं सर्जनात्मक होगा।

छायावादोत्तर कविता में प्रयोगवाद और नयी कविता के अग्रणी कवि के रूप में अज्ञेय का महत्व निर्विवाद है। आधुनिक भाव–बोध और संवेदना के कवि के रूप में उनकी एकदम अलग पहचान है। उनके आधुनिक बोध के मूल में है – व्यक्तित्व की खोज। व्यक्तित्व की खोज का समकक्ष है – अभिव्यक्ति की खोज। अज्ञेय के लिए काव्य–प्रक्रिया का अपना महत्व है। शब्द और सत्य में निरंतर द्वंद्व की स्थिति बनी रहती है। अज्ञेय निर्वैयक्तिक संवदेना को महत्व देते हैं। तनाव और द्वंद्व की स्थिति में ही अज्ञेय को नया काव्योन्मेष उपलब्ध हो पाता है।

अज्ञेय की प्रकृति, प्रेम, आत्मदान, मृत्यु संबंधी कविताओं में सब कुछ नयी प्रश्नशील निगाह से देखा जा रहा है। प्रकृति केवल अलंकरण तक सीमित नहीं है। प्रेम ढर्रे से अलग है। मृत्यु भय नहीं देती। वरण के लिए एक अप्रत्याशित विकल्प देती है। एक ओर अहं का विलयन अज्ञेय का ज़रूरी सरोकार है। दूसरी ओर व्यक्तित्व का तेजस अंश बचाए रखने की चिंता अज्ञेय को सबसे अलग प्रमाणित करती है। अज्ञेय की स्वाधीन चिंता के निहितार्थ अनेक हैं।

अज्ञेय की कई कविताएँ काव्य–प्रक्रिया की ही कविताएँ हैं। उनमें अधिकतर कविताएँ अवधारणात्मक हैं जो व्यक्तित्व और सामाजिकता के द्वंद्व को, रोमांटिक आधुनिक के द्वंद्व को प्रत्यक्ष करती हैं। जिजीविषा अज्ञेय का अधिक प्रिय काव्य–मूल्य है। वह संघर्ष की सार्थकता का पर्याय है। अज्ञेय आधुनिक भावबोध के एक अत्यंत महत्वपूर्ण कवि के रूप में बराबर पढ़े जाते रहेंगे और शब्द–अर्थ का नया संबंध खोजने–पहचानने में सहायक होंगे।

उपसंहार

जैसा कि उपन्यास साहित्य, सामाजिक परिवर्तन और लेखकों के जीवन से जुड़े विभिन्न विषयों के इर्द–गिर्द घूमता है, अज्ञेय का समावेश संभवतः पुस्तक में दर्शाए गए पात्रों या साहित्यिक परिदृश्य पर उनके प्रभाव का संकेत दे सकता है।

हालांकि ''असाध्य वीणा'' में अज्ञेय के संदर्भ का विशिष्ट संदर्भ भिन्न हो सकता है और उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं को उजागर कर सकता है, उनका समावेश उनकी स्थायी विरासत और साहित्यिक दुनिया पर प्रभाव को रेखांकित करता है, जो उन्हें उपन्यास के कथा ढांचे के भीतर एक महत्वपूर्ण व्यक्ति बनाता है।

अज्ञेय की असाध्य वीणा की प्रासंगिकता इसी में है कि यह भीड़ से अलग अपनी रचना शक्ति को तमाम तरह के खतरों से बचाने के लिए प्रेरित करती है। 'मुर्दा शांति' से भरा हुआ सृजन कूड़े के समान है अगर उसमें जीवन का संगीत नहीं। उसकी ध्वनी नहीं। साहित्य वह है जो विविधता से भरा हो खुले आसमान जितना बड़ा। तभी उसमें वे सारी आवाजें समा सकती हैं। जो दबी हुई हैं। जिन्हें आसानी से नहीं सुना जा सकता। दूर रहकर उसे महसूस नहीं किया जा सकता। इसके लिए उसी प्रकार पास जाना पड़ता है जैसे प्रियंवद वीणा के पास पहुंचता है। असाध्य को साधने की यही प्रक्रिया इस कविता को महत्वपूर्ण बनाती है और यादगार भी।

संदर्भ सूची

- सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यन' अज्ञेय, असाध्य वीणा, पृष्ठ 111
- अज्ञेय, 'शब्द, मौन, अस्तित्व', अद्यतन, पृष्ठ 78
- अज्ञेय अपने बारे में: एक साक्षात्कार. आकाशवाणी महानिदेशालय. पृष्ठ 91
- असाध्य वीणा. पृष्ठ 43
- वही. पृष्ठ 34
- वही. पृष्ठ 35
- वही. पृष्ठ 36
- अज्ञेय अपने बारे में. पृष्ठ 57
- असाध्य वीणा. पृष्ठ 41
- असाध्य वीणा. पृष्ठ 43
- 'रहस्यवाद' कविता. (हंस अंक. 1939).
- सांस्कृतिक समग्रता. (1984). भाषिक वैविध्य (केन्द्र और परिधि). नेशनल पब्लिशिंग हाउसः नई दिल्ली. संस्करण. पृष्ठ 19.
- अज्ञेय, अज्ञेय की प्रतिनिधि कविताएं एवं जीवन परिचय (सं. विद्यानिवास मिश्र), पृष्ठ 147

श्री रामचरितमानस से साम्प्रतिक समस्याओं का समाधान

– **डॉ. अम्बिकेश त्रिपाठी**
हिन्दी विभागाध्यक्ष
स.वि.म.वि एवं प्रोद्यौ. स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, लालगंज, प्रतापगढ़, उ.प्र.

चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रतिस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातक नाशनम्।।[1]

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं–नानाभाँति राम अवतारा। रामायण शतकोटि अपारा। श्री रामचन्द्र जी का चरित्र सौ करोड़ विस्तार वाला है और उसके एक–एक अक्षर भी मनुष्यों के महान पापों को नष्ट करने वाला है। श्रीराम के पावन चरित्र का वर्णन ऋग्वेद (10वां मण्डल), वाल्मीकिरामायण, महाभारत (द्रोणपर्व, शांतिपर्व एवं आरण्यक पर्व), से लेकर ब्राह्मण ग्रंथों, पुराणों, संहिताओं से होते हुए आधुनिक युग में विशेष कर पिछली शताब्दी (1901–2000 ई.) से अब तक 350 संस्कृत महाकाव्यों की सर्जना हुई। इसमें 22 सर्गों में निबद्ध, ज्ञानपीठ एवं पद्म विभूषण से विभूषित विश्वरत्न जगदगुरू स्वामी रामभद्राचार्य जी द्वारा रचित श्री भार्गव राघवीयम् महाकाव्य विशेष रूप से गणनीय है।

हिन्दी–साहित्य में भी रामकाव्य–परम्परा काफी समृद्ध हो रही है। हिन्दी के आदिकाल से लेकर आधुनिक काल–पर्यन्त कहीं स्फुट रूप मे ंतो कहीं स्वतंत्र रूप से काव्यों में रामचरित्र का वर्णन हुआ है। चन्दवरदाई (1148–1193 ई.) कृत पृथ्वीराज रासो के 'द्वितीय समय' में दशावतारों के वर्णन के अन्तर्गत 38 छंदों में रामकथा वर्णित है। इसके पश्चात् स्वामी रामानंद (1368–1468 ई.) ने रामाष्टक, रामार्चन पद्धति, हनुमान जी की आरती आदि लिखकर अपार ख्याति अर्जित की। ईश्वरदास कृत भरत मिलाप, अंगद पैज, गोस्वामी विष्णुदास (1393–193 ई.) भाषा वाल्मीकि रामायण, सूरसागर के 9वें स्कन्ध में महाकवि 'सूरदास' जी ने रामचरित का वर्णन किया है। मीरा, अग्रदास, नरिहरदास, अग्रसाद, गो. तुलसीदास, केशवदास (रामचंद्रिका), लालदास, सेनापति, छत्रसाल (रामावतार), के साथ–साथ आधुनिक काल में हरिऔध जी ने 'वैदेही वनवास' (1940 ई.), मैथिलीशरण गुप्त (साकेत 1935), पंचवटी, (1925 ई.), जयशंकरप्रसाद कृत अयोध्या उद्धार, निराला की राम की शक्तिपूजा (1936 ई.), बालकृष्ण शर्मा नवीन द्वारा रचित उर्मिला जो 1934 ई. में लिखा गया किन्तु 1957 ई. में प्रकाशित हुआ। बलदेवप्रसाद मिश्र के द्वारा रचित 'साकेत संत' (1946 ई.) भारत भूषण अग्रवाल कृत सेतुबंधन (1957 ई.) डॉ. रामकुमार वर्मा द्वारा विरचित उत्तरायण (1972 ई.) एवं अरूधंती महाकाव्य (1994) जो पूज्य गुरुदेव स्वामी रामभद्राचार्य द्वारा रचित आदि का नाम मोटे तौर पर लिया जा सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखित 'श्रीरामचरितमानस' निस्संदेह राम काव्य–मणि–माला का सुमेरू है। ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान लिखने में 2 वर्ष 11 महीने 17 दिन लगे थे जबकि 'मानस को लिखने में 2 वर्ष 7 महीने 26 दिन लगे थे। जिस प्रकार देश की व्यवस्था को संचालित करने के लिए संविधान लिखा गया ठीक उसी प्रकार से 'जीवन कैसे जिया जाए' इसके लिए रामचरितमानस लिखा गया। वास्तव में यह ग्रंथ जीवन–जीने की आचार संहिता है। दुर्भाग्यतः देश के अनेक बुद्धि–भ्रष्ट नेता मानस को ही समस्या बता कर, इसके पन्नों को फाड़ने या जलाने की बात कर रहे हैं, इन मूर्खों को कौन समझाए कि श्रीरामचरितमानस समस्या नहीं अपितु विश्व की समस्त समस्याओं का समाधान है। निश्चित रूप से व्यक्ति, परिवार, समाज, देश एवं समग्र विश्व में जितनी भी गंभीर से गंभीर समस्याएँ हैं सबका निदान 'मानस' में हैं। गुरु कृपा प्राप्त साधक खान में छिपे समस्या–समाधान रूपी रत्नों को खोज सकता है। 'गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खनिक' उदाहरणतः कोरोना जैसी भयंकर महामारी का उपचार चिकित्सकगण 'सोसल डिस्टैंशिंग' बता रहे थे, इसका संकेत गोस्वामी जी ने एक नहीं तीन स्थानों पर स्पष्ट रूप से लगभग 450 वर्ष पहले ही कर दिया था–

1. **देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दण्ड प्रनामू।।[2]**
2. **दूरि ते ताहि सबन्हि सिर नावा। पूछे निज वृत्तान्त सुनावा।।[3]**
3. **दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा।।[4]**

परिवार, समाज, देश एवं पूरी दुनिया में जो प्रमुख समस्याएं हैं, उनमें से कतिपय समस्याओं के निदान की तरफ ध्यानाकृष्ट किया जा रहा है।

1. जनसंख्या विस्फोट– संयुक्त राष्ट्र संघ के जो नवीन आँकड़े आये हैं उसमें भारत की कुल आबादी 142 करोड़ 86 लाख हो गयी है जबकि चीन 142 करोड़ 57 लाख की आबादी के साथ दूसरे स्थान पर आ गया है। अनुमानतः 2050 तक भारत की कुला आबादी 166 करोड़ के ऊपर हो जायेगी, यह घोर चिन्ताजनक है। भारत का क्षेत्रफल की दृष्टि से 7वाँ स्थान है जबकि जनसंख्या प्रथम स्थान पर है इसमें घोर असंतुलन है। भारत सरकार को रामराज से प्रेरणा लेकर केवल दो संतान पैदा करने की छूट देनी चाहिए। आज से लगभग 450 वर्ष पूर्व गोस्वामी जी ने 'हम दो हमारे दो' के सिद्धान्त का वर्णन करके, आज के लोगों को चेतावनी दी है–

"दुइ–दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरे। भए रूप गुन शील घनेरे।।[5]

उपर्युक्त पंक्तियों के आलोक में अन्य ग्रंथों से पड़ताल करने पर विदित हुआ कि राम के दो पुत्र–लव और कुश, भरत के दो पुत्र– तक्ष और पुष्कल, लक्ष्मण के दो पुत्र अंगद और चंद्रकेतु, तथा शत्रुघ्न के भी दो पुत्र– सुबाहु और शत्रुघाती हुए। लक्ष्मण जी को एक कन्या हुई थी जिसका नाम सोमदा गांधर्वी था। गोस्वामी जी ने रावण के बहुसंख्यक परिवार की दुर्दशा का वर्णन कर पुनः संसार को सावधान किया है। 'कबीरदास' जी ने 'बीजक' ग्रंथ में 'रावण के एक लाख पुत्र एवं सवा लाख पौत्रों की चर्चा की है– एक लाख पूत, सवा लाख नाती। ता रावन घर दिया न बाती। श्रीरामचरितमानस भी रावण के अपरिमित परिवार की झाँकी प्रस्तुत करता है।

"दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा।
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती।।"6

पुनश्च ध्यातव्य है कि जनसंख्यातिरेक के कारण रावण के परिवार को सम्यक्, शिक्षा, अनुशासन नहीं मिल पाया। परिणामस्वरूप पावन पुलस्त्य कुल में अनीति एवं भ्रष्टाचार का अपरिमित बोलबाला हो गया–

"बरनि न जाय अनीति, घोर निसाचर जो करहिं
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहिं कौन मिति।।"

बाढ़े खल चहुँ ओर जुआरा। जे लंपट परधन पर दारा।
मानहि मात–पिता नहि देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा।।
जिन्ह के यह आचरण भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी।।"[7]

इस प्रकार बहुसंख्यक कुटुम्ब वाला लंकाधिपति रावण, सर्व, धन–सम्पत्ति सहित विनष्ट हो गया।

2. दहेज की समस्या का समाधान– श्रीरामचरितमानस में विवाह के अवसर पर स्वैच्छिक उपहार जो कन्या पक्ष से 'वर–पक्ष' को प्रदान किया गया, उसे दहेज कहा गया है। पार्वती जी के पिता हिमांचल ने भी दामाद शिव जी को बिना माँगे दहेज स्वरूप अनेक उपहार भेंट किये थे–

अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना।
दाइज दियो बहु भाँति पुनि कर जोरि हिम भूधर कह्यो।।[8]

राजा जनक के द्वारा अपनी पुत्रियों के विवाह में अपार स्वैच्छिक दहेज देने का उल्लेख मिलता है–

"दाइज अमित न सकिअ कहि, दीन्ह विदेहि बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति लोकसम्पदा थेरि।।9
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मंडपु पूरी।।10

आज की तरह गलाघोंटू दहेज फिक्स करने की बात मानस में कहीं नहीं आती। वर वक्ष का वर्तमान समय में ज्यादातर मौकों पर पैसे के लिए कलह करना मानो परम्परा बन गयी है। विदाई के समय अकूत दहेज लेने वाला वरवक्ष प्रजा को धोती/साड़ी देने में झगड़ता है। राजा दशरथ ने जनक

जी के उपहारों को ससम्मान स्वीकार किया तथा बड़ी प्रसन्नता से उन्हीं की प्रजा और याचकों को बकसीस के रूप में सारा धन बाँटकर मानो 'दहेज' निषेध की घोषणा कर दी हो–

'प्रेम सहित राय, सब लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा।[11]

3. ग्लोबलवार्मिंग की समस्या का निदान– वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों (मीथेन, कार्बनडाईआक्साइड, और क्लोरो–फ्यूरो–कार्बन) के बढ़ने के कारण पृथ्वी के औसत तापमान में जो बढ़ोत्तरी होती है वही ग्लोबल वार्मिंग है। इसकी वजह से जलवायु परिवर्तन होता है। वर्तमान समय में एयर कण्डीशन (AC) का प्रयोग पूरी दुनिया में बढ़ा है। AC से ही जहरीली गैस–क्लोरोफ्लोरो कार्बन और हाइड्रोक्लोरोफलोरो कार्बन गैस निकलती है जो ओजोन के परत को क्षीण करती है, जिससे हानिकारक पैराबैगनी किरणें पृथ्वी पर आकर अनेक असाध्य बीमारियों को जन्म देती है। रामचरितमानस में वर्णित संतुलित पर्यावरण एवं प्रकृति के प्रति प्रणम्य भाव के निर्दशन पदे–पदे परिलक्षित होते हैं। मानस में वर्णित सरयू, तमसा, गोमती, सई, गंगा, यमुना, सरस्वती, मंदाकिनी, पयस्विनी, गोदावरी, नर्मदा एवं सोन आदि नदियों के प्रति प्रणम्य भाव देखने को मिलता है। नदियों का दर्शन, उनका जल–स्पर्श, एवं स्नान परम पुण्यप्रद माना गया है–

"दरस परस मज्जन अरू पाना। हरइ पाप कह वेद पुराना।"[12]

आज दुर्भाग्यतः गंगा विश्व की सर्वाधिक प्रदूषित नदियों में दूसरे स्थान पर है। आज विश्व को रामराज्य से प्रेरणा लेने की जरूरत है। जहाँ संतुलित तापमान एवं समय पर वर्षा होने की बात की गयी है। आज की तरह धरती को छलनी करके समरसेबल लगाने की जरूरत नहीं थी, क्योंकि उस समय का पर्यावरण बेहद संतुलित था–

"विधु महि पूर मयूखन्हि रवि तप जेतनहिं काज।
माँगे वारिद देहि जल, रामचंद्र के राज।।"[13]

आज वायु प्रदूषण से बचने के लिए सम/विष संख्या के हिसाब से मोटर/कार चलने की अनुमति देने की नौबत आ गयी है। पूरा मानस यज्ञीय–संस्कृति पर आधारित है। कौटिन्ह बाजि मेघ प्रभु कीन्हें।

4. प्रतिभा–पलायन की समस्या का समाधान– श्रीरामचरितमानस में श्रीराम की अपनी जन्मभूमि से अगाध प्रेम दृष्टिगोचर होता है। 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' प्रभु राम जी वनवास की अवधि में अवध की मिट्टी को साथ ले गये थे जिसकी वे नियमित पूजा करते थे। आज की युवा–पीढ़ी अच्छे खासे पैकेज के चक्कर में विदेशी नागरिकता ले रही है। राम जी ने चार सौ कोस की सोने की लंका रावण से जीत लेने के बाद, विभीषण को ससंकोच सौंप दिया, और कहा कि मित्र आपको मैं दे ही क्या रहा हूँ। प्रभु राम ने लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, नल–नील, जाम्बवान और हनुमान को भेजकर विभीषण का राजतिलक कराया–

'सब मिलि जाहु बिभीषण साथा। सारेउ तिलक कहेउ रघुनाथा।[14]

इस प्रकार राम जी ने देश से प्रतिभा–पलायन की समस्या का समाधान प्रस्तुत किया और लक्ष्मण समेत वानरी सेना से कहा कि–

"अवध पुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ।
अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी। मम धामदा पुरी सुखरासी।।[15]

5. आतंकवाद की समस्या का निदान– आतंकवाद आज एक देश की समस्या नहीं है अपितु यह वैश्विक समस्या है। मानस में आतंकवाद उन्मूलन की एक व्यापक योजना का उल्लेख मिलता है। प्रयागराज में माघ महीने की मकर संक्रान्ति को भरद्वाज आश्रम में एक महत्त्वपूर्ण गोपनीय बैठक हुई जिसमें आतंकवाद को मिटाने की योजना बनी – **'तहाँ होइ ऋषि–मुनिय समाजा।**[16] इस बैठक में वशिष्ठ, विश्वामित्र, भरद्वाज, अत्रि, एवम् अगस्त्य की सक्रिय भूमिका तय की गयी। विश्वामित्र ने यज्ञ रक्षा के बहाने राम जी को युद्धाभ्यास कराया। यज्ञ रक्षा में राम–लक्ष्मण को देने में जब राजा दशरथ को संकोच हुआ तब वशिष्ठ ने राजा दशरथ को समझाया–

तब वशिष्ठ बहुविधि समझावा। नृप संदेह नाश कहँ पावा।।[17]

यही नहीं महर्षियों–मुनियों के आश्रम केवल पूजास्थल नहीं थे अपितु वे 'रिसर्च सेण्टर थे।' विश्वामित्रा जी ने अपनी खोजी हुई दिव्य–शक्तियों को राम–लक्ष्मण को उपयुक्त पात्र समझ कर सौंप दिया–

"तब रिषि निज नाथहिं जियँ चीन्हीं। विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हीं।।
जाते लाग न छ्ुधा पिपासा। अतुलित बल तनु तेज प्रकासा।।
आयुध सर्व समर्पि कै प्रभु निज आश्रम आनि।
कन्द मूल फल भोजन दीन्ह भगति हित जानि।।"[18]

प्रयागराज की बैठक के अनुसार ही राम ने वन की यात्रा की जहाँ आतंकवादियों के नेटवर्क थे, उनको ध्वस्त किया। प्रथमतः भरद्वाज ऋषि से ही प्रयागराज में वन जाने का मार्ग पूछा–

"राम सप्रेम कहेउ मुनि पाहीं। नाथ कहिअ हम ककेहि मग जाहीं।[19]

भरद्वाज जी ने वाल्मीकि आश्रम की तरफ का मार्ग बताया। ध्यातव्य है कि इस तरफ विराध राक्षस का आतंक था। वाल्मीकि जी से राम जी ने योजनानुसार आगे का मार्ग पूछा–

"अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उद्वेग न पावै कोई।।
अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित तहै जाऊ।।[20]

वाल्मीकि जी ने चित्रकूट रहने के लिए निर्देशित किया–

'चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तह तुम्हार सब भाँति सुपासू।।[21]

इसके बाद राम–लक्ष्मण एवं सीता चित्रकूट के कानन में मुनि अत्रि के आश्रम पहुँचे। माता अनुसूया एवं अत्रि का शुभाशीष लेकर अन्य संवेदनशील वन में जाने की आज्ञा माँगी। रास्ते में ही चित्रकूट के आतंकी विराध का वध किया–

"तब मुनि सन कह कृपा निधाना। आयसु होइ जाइ वन आना।
मिला असुर विराध मग जाता। आवतही रघुवीर निपाता।।[22]

वन–मार्ग में जाते हुए राम जी ने ऐसे हृदय–विदारक दृश्य देखे जिससे उनके नेत्रों में आँसू भर आये। ऋषियों–मुनियों के हड्डियों का ढेर देखा, जिन्हें राक्षसों ने मारकर खा डाला था–

"अस्थि समूह देखि रघुराया। पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया।
निसिचर निकर सकल मुनि खाये। सुनि रघुवीर नयन जल छाये।
निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमहि जाइ–जाइ सुख दीन्ह।।[23]

इस प्रकार आतंकवाद का मूलोच्छेदन करते हुए राम मुनिवर अगस्त्य के आश्रम पहुँचे और अपने मिशन (आतंकवाद–उन्मूलन) के बारे में जानकारी देते हुए संकेत किया कि आपको तो सारी योजना पता ही है क्योंकि आप तो महर्षिसम्मेलन (प्रयाग) में गये ही थे–

"तुम्ह जानेहु केहि कारन आयउँ। ताते तात न कहि समुझायउँ।
अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौ मुनि द्रोही।।[24]

अन्ततः ऋषिवर अगस्त्य आशीर्वाद देते हुए कहते हैं– 'निसिचर करि वरूथ मृगराजः।' अगस्त्य जी ने उन्हें दण्डवन जाने को कहा– 'दण्डक वन पुनीत प्रभु करहूँ। उग्र साप मुनिवर कर हरहूँ।'[25] ध्यातव्य है कि ताड़का, सुबाहू, विराध को मारने के बाद यहाँ खर, दूषण एवं त्रिशिरा का वध किया। वानर–भालू एवं पक्षियों के सहयोग से 'सैन्य संगठन' कर कुम्भकर्ण, मेघनाद एवं रावण जैसे आतंकियों को समाप्त किया। संकेत यही है कि आतंकवाद को मिटाने में जब तक देश का हर व्यक्ति सहयोग नहीं करेगा तब तक आतंकवाद मिट नहीं सकता।

6. नारी स्वातंत्र्य की समस्या– हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में संकेत मिलते हैं कि भारत में क्रूर विदेशी मुसलमानों के शासन में नारियों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा– बाल विवाह, पर्दा–प्रथा, सती प्रथा, जौहर व्रत आदि की कुप्रथाएं विदेशी मुसलमान शासकों की भयावह कार्य–प्रणाली एंव एकांगी सोच का परिणाम थी। घर–परिवारों में भी 'बहू–बेटी' में अन्तर किया जाता था– जायसी ने मानसरोदक खण्ड (पद्मावत महाकाव्य) में संकेत किया– 'सासु ननद बोलिन्ह जिन नेंही।'[26] आगे गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो नारी परवशता का चित्र ही उकेर दिया– "कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।"[27]

सीता जी के स्वयंवर में बगैर सीता जी का मन जाने जनक जी ने धनुष–यज्ञ आयोजित किया। सीता जी इससे परेशान हो उठी थी– 'अहह तात दारून हठ ठानी। जानत कछू लाभ नहिं हानी।।[28] एक तरफ नाम 'स्वयंवर' का और शर्त बड़ी कठिन। आज यह युग की समस्या है 'बेटी को देखने के लिए वर पक्ष भारी भीड़ लेकर आता है, उसके गुण–दोष देखता है दूसर तरफ शर्म के चादर में लिपटी बेटी यंत्रवत संवेदनहीनता का शिकार होती है। इस समस्या का समाधान भी मानस करता है। नव विवाहिता बहुओं को जब राजा दशरथ अयोध्या के महल में प्रथमतः ले कर आते हैं तो रानी कौशल्य से कहते हैं–

'वधू लरिकिनी पर घर आई। राखेउ नयन पलक की नाई।'[29]

बहुविवाह की समस्या का निदान– रामचरितमानस में राजा दशरथ के तीन रानियों के होने की बात सामने आती है। रावण के यहाँ तो रनिवास में रानियों की संख्या अपरिमित थी–

'देव दनुज, गंधर्व, नर, किन्नर नाग कुमारि।
जीत वरो निज बाहु बल, बहु सुन्दर वर नारि।।[30]

राम परक अनेक काव्यों में राजादशरथ की अनेक रानियों का उल्लेख मिलता है। श्रीराम ने बहुविवाह का दुष्परिणाम, अयोध्या में देखा था। रानी कैकेयी के कारण महाराज दशरथ को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। इस समस्या का निराकरण स्वयं राम जी ने किया। वे जीवन–पर्यन्त एक पत्नीव्रत का पालन किया। अपने राज्य में केवल एक विवाह करने की ही अनुमति दी थी– 'एक नारिव्रत रत सब झारी।'[31]

7. पारिवारिक एवं वैश्विक वैमनस्य की समस्या का निदान– गोस्वामी तुलसीदास जी ने पारिवारिक सौमनस्य का ऐसा ताना बाना बुना है जो आज के युग के लिए 'संजीवनी' के समान है। आज समाज–परिवार में– भाई–भाई, माता–पिता, मा–बेटा सास–ननद भाई–बहिन में अर्न्तकलह पग–पग पर दिखती है। संसार 'राम' जी के आचरण से प्रेरणा ले सकता है। चित्रकूट में ही 'मानस की ज्ञानसभा' का आयोजन हुआ। विश्व की यह इकलौती पंचायत है जहाँ विमर्श देने के लिए होता है, लेने के लिए नहीं। राम, माता–पिता की आज्ञानुसार चौदह वर्षों के लिए वन आ गये हैं, कहते हैं राजा भरत ही हों। भरत कहते हैं हमेशा ज्येष्ठ पुत्र उत्तराधिकारी होता है राजा राम बनें। 'सिंहासन को दोनों ने फुटबाल बना डाला। एक किक राम मारते हैं तो एक किक भरत मारते हैं। यह निवृत्ति मार्गी सोच अयोध्या की है। जिस कैकेयी ने राम को 14 वर्षों का वनवास दिया रामजी ने सर्वप्रथम उसी से मिले– 'प्रथम राम भेंटी कैकेयी।'

आज रूस और यूक्रेन तथा इजरायल और हमास के बीच जो युद्ध चल रहा है, इसके भयानक परिणाम विश्व के सामने है। आज सारा विश्व परमाणु बम की सेज पर सो रहा हे। राम–भरत के आचरण से इस समस्या का निदान हो सकता है। एक बात और समझनी होगी कि बगैर 'गृह बन्धुत्व के विश्वबन्धुत्व की बात करना बेइमानी होगी।

राम जी माता–पिता के वचन पालन करने के लिए सिंहासन छोड़ देते हैं, आज की पीढ़ी बूढ़े माँ–बाप को अनाथाश्रम भेज रही है। गायों को छोड़कर, कुत्ते पाले जा रहे हैं।

विस्तारभय से अपनी बात को समेटते हुए मैं कहना चाहता हूँ कि विश्व में जितनी समस्याएँ आयीं, जितनी समस्याएं हैं और जितनी समस्याएं आयेगी, सबका समाधान 'श्रीमराचरितमानस' में

अन्तर्व्याप्त है। अन्ततः मैं कहना चाहता हूँ कि बिना राम के भारत में भारतवर्ष की कल्पना करना बेइमानी होगी–

> **"राम हमारा धर्म हमारा, कर्म हमारी मति है,**
> **राम हमारी शक्ति हमारी, भक्ति हमारी गति है।**
> **बिना राम के आदर्शों का चरमोत्कर्ष कहाँ है,**
> **बिना राम के इस भारत में, भारतवर्ष कहाँ है।।"**

सन्दर्भ सूची –

1. रामरक्षा स्तोत्र, प्रथम श्लोक
2. श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा 192/5
3. वही, किष्किन्धाकाण्ड, दो. 24/1
4. वही, लंकाकाण्ड, दो. 106/5
5. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 24/8
6. वही, बालकाण्ड, दो. 180/2–3
7. वही, बालकाण्ड, दो. 183/1–3
8. वही, बालकाण्ड, दो. 100/7–9
9. वही, बालकाण्ड, दो. 333
10. वही, बालकाण्ड, दो. 325/2
11. वही, बालकाण्ड, दो. 354/4
12. वही, बालकाण्ड, दो. 38/12–13
13. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 23
14. वही, लंकाकाण्ड, दो. 105/3
15. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 3ग/2–7
16. वही, बालकाण्ड, दो. 43ख/7
17. वही, बालकाण्ड, दो. 207/8
18. वही, बालकाण्ड, दो. 208ख/7–8
19. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 108/2
20. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 125/2–4
21. वही, अयोध्याकाण्ड, दो. 131/3
22. वही, अरण्यकाण्ड, दो. 5ख/12
23. वही, अरण्यकाण्ड, दो. 8/6–7, दो. 09
24. वही, अरण्यकाण्ड, दो. 12/02
25. वही, अरण्यकाण्ड, दो. 12/15–16
26. पद्मान्त, जायसी, मानसरोवक खण्ड
27. रामचरितमानस, बालकाण्ड, दो. 101/5
28. वही, बालकाण्ड, दो. 257/2
29. वही, बालकाण्ड, दो. 354/8
30. वही, बालकाण्ड, दो. 182ख
31. वही, उत्तरकाण्ड, दो. 21/7

युगांतर अंतर्राष्ट्रीय शोध–पत्रिका
खंड–13, अंक–49, वर्ष–2024 (जनवरी–मार्च, 2024) आईएसएसएन : 2320–2467, आईएफ: 5.6

INDIA AND CHINA: POLITICAL CONCERNS AND GEOPOLITICAL DYNAMICS

- Vivek Singh
Research Scholar, Department of Law,
M.J.P.R University, Bareilly.

Abstract

India and China, two of the world's most populous and rapidly developing nations, share a complex relationship marked by both cooperation and conflict. This research paper examines the political concerns between these two Asian giants, focusing on territorial disputes, economic competition, strategic alliances, and their roles in global geopolitics. By analyzing historical contexts, recent developments, and future projections, this paper aims to provide a comprehensive understanding of the multifaceted interactions between India and China.

Keyword: *Asia, Conflicts. Tension, Border, Standoff, Geopolitics*

Introduction

India and China have a long history of cultural and economic exchanges, but their modern political relationship is fraught with challenges. Both nations aspire to regional dominance and global influence, leading to a competitive dynamic that shapes their foreign and domestic policies. This paper explores key issues such as border disputes, trade tensions, and geopolitical strategies that define the India-China political landscape.

Historical Territorial Disputes

Sino-Indian War (1962), causes and impact

Many consider the 1962 Sino-Indian War to be a turning point in the history of both China and India. This was a short-lived but fierce conflict with deep historical, political, and geographical underpinnings. Tibetan historical roots can be found in the Sino-Indian rivalry. Tibet has historically been a place of power exercise for both China and India, acting as a barrier between them since ancient times. India had a stronger cultural and spiritual impact, while China asserted governmental dominance. But it did it in a variety of ways. Tibet's formal absorption by China in 1950 resulted in a progressive erosion of its autonomy. The situation deteriorated in 1959 with the suppression of a Tibetan rebellion against Chinese control. The Dalai Lama, the spiritual head of Tibet, fled to India in pursuit of safety.[1]

1. Territorial Issue

The high-altitude area in the western Himalayas known as Aksai Chin was a major source of contention. This region, spanning around 38,000 square kilometers, was ruled by China, but India asserted its claim to it as a part of the Union Territory of Ladakh. China constructed the Aksai Chin Road, a vital highway connecting Tibet and Xinjiang, along this region.[2]

India's claims to Aksai Chin and its desire to restore its power and sovereignty over this area served as the catalyst for the conflict. The center of the eastern portion of the boundary dispute was the NEFA region, which is today known as Arunachal Pradesh. China asserted that the McMahon Line, which delineated the boundary between Tibet and British India in 1914, was invalid and claimed large swathes of NEFA. Conversely, the McMahon Line was

[1] Historical Perspective of the 1962 Sino-Indian War. https://bestdiplomats.org/sino-indian-war/
[2] *Id*

regarded as China's legal border with India. The territorial dispute in this area was the source of military engagements during the conflict.[3]

Apart from Aksai Chin and NEFA, there were additional little areas along the Sino-Indian boundary where there were territorial disputes. These included the Bara Hoti region in the western sector and the border regions in the eastern sector, such as the Sumdorong Chu region. These disputes added to the already existing tensions along the border.[4]

2. Political Differences

The conflict grew worse due to ideological differences between the democratic republic of India and the communist state of China. Interpersonal mistrust grew as a result of these differences.
Worldviews became fundamentally misaligned as a result of the ideological mismatch between Mao Zedong's communist rule in China and India's democratic, non-aligned stance. The territorial dispute, centered mostly on Aksai Chin and the northeastern frontier, was rooted in divergent historical claims and interpretations of the Line of Actual Control. Tibet was a source of conflict since India gave refuge to the 14th Dalai Lama after the Tibetan rebellion in 1959, which further damaged ties with China. China's alliance with the Soviet Union and India's non-alignment because of long-standing animosity and the competition for regional dominance served as the catalysts for geopolitical rivalry. The dispute was intensified by the influence of superpowers like the US and the USSR, which supported India.

Internal politics also played a role; Jawaharlal Nehru, the prime minister of India, had to deal with the fallout from Mao's Great Leap Forward and the urge to organize the people, which had an impact on China. Nationalism was fostered by both sides, influencing public perception and governmental policies. These political differences, which have external sources, influenced the Sino-Indian War's setting and continue to affect bilateral relations and the current boundary dispute.

3. Lack of Negotiations

Fear was heightened in part because diplomatic attempts to resolve border disputes between China and India had not progressed much in the 1960s. There was a lack of reliable communication between the two nations in the years preceding the battle. Diplomatic channels were either nonexistent or often strained, making constructive communication difficult. A lack of understanding of one another's viewpoints exacerbated the communication failure.

Border Standoffs
- Doklam (2017)

There was a stand-off between the Indian and Chinese troops in June 2017. It was triggered when the Chinese troops tried to construct a road near the Doklam plateau - a territory which is also claimed by China and Bhutan. The Indian troops resisted the Chinese movement as the territory was close to an Indian highway. The clash continued for 72 days.[5]

- Galwan Valley (2020)

---

[3] *Id*
[4] *Id*
[5] India-China standoff: A timeline of skirmishes between the two neighbours - India News News. https://www.wionews.com/india-news/india-china-standoff-a-timeline-of-skirmishes-between-the-two-neighbours-308076

As many as 20 Indian soldiers and four Chinese soldiers died when there was a clash in June 2020 in the Galwan Valley in the Ladakh region. The clash started after the Chinese patrols advanced onto the Indian side of the border. It was fought with sticks and clubs, not guns. The clash was one of the major battles between the two sides in the area for 45 years.[6]

Strategic Military Developments

- Infrastructure build-up along the Line of Actual Control (LAC)

The LAC is the de facto border between India and China; it is distinct from the de jure legal boundaries that are not agreed upon. That said, especially in the past, it was often argued by China that the LAC was indeterminate and that therefore their incursions were accidental or not incursions at all. The Indian government has managed to expand infrastructure networks to improve coverage of the Line of Actual Control (LAC) in the last 10 to 15 years. There have been vast improvements to the road network, in spite of doctrinal, natural, bureaucratic, and financial difficulties. The increased number of tunnels and bridges also signals far more investment, operational capacity, and technical capability, while independently adding to the quality of the road system. Regarding the air domain, India has maintained a strategic advantage—in some respects, and despite a smaller budget—by leveraging its topography (allowing India to launch aircraft at full capacity). [7]The picture is less bright, however, in terms of rail connectivity, where there is a large asymmetry. Nonetheless, India is in an overall better position today along the LAC, infrastructurally speaking, than it was 20 years ago.[8]

Prior to this period of growth, the Indian Government had been constrained by its own doctrine that prohibited building infrastructure. This changed, owing to strategic pressures and internal changes, largely stemming from the Chinese military's actions on the border and, diplomatically, from prolonged deadlocked negotiations with China regarding disputed territory.

- Military modernization and strategic deployments

The 2020 severe skirmishes at Galwan have altered the course of India-China ties. In order to support military modernization, it has also forced the Indian government and policy makers to make significant, long-term adjustments. The Galwan clashes have highlighted the pressing need for a younger, slimmer, and more modern military force. The imperative for India to modernize its defenses has intensified in light of the events occurring on the other side of the Line of Actual Control (LAC) since President Xi Jinping assumed office in China in 2012. Under President Xi, there has been a rise in Chinese assertion and military aggression, which has been motivated and sustained by changes in Chinese domestic politics and Xi Jinping's political ambitions. The unresolved border coupled with rising Chinese nationalism and military assertiveness have become a major challenge for India, particularly since the Galwan clashes in June 2020. After the Galwan clashes, in which both sides suffered fatalities, the two largest armies in South Asia have remained fully mobilised and in eyeball-to-eyeball confrontation across the LAC in Ladakh, which has made the situation on the ground highly unpredictable and volatile. This confrontation between the Indian military

---

[6] India and China troops clash on Arunachal Pradesh mountain border – manmadenews. https://manmadenews.com/2022/12/13/india-and-china-troops-clash-on-arunachal-pradesh-mountain-border/

[7] Sino-Indian Border Infrastructure In The Indian Defense Ministry's Year End Review – Analysis – Eurasia Review. https://www.eurasiareview.com/14012024-sino-indian-border-infrastructure-in-the-indian-defense-ministrys-year-end-review-analysis/

[8] Tibet Rights Collective - Satellite photographs reveal China has completed the Pangong Tso bridge. https://www.tibetrightscollective.in/news/satellite-photographs-reveal-china-has-completed-the-pangong-tso-bridge-and-is-now-constructing-a-road-to-connect-the-tibet-garrison

and the People's Liberation Army (PLA) across the LAC has continued for over three years and prevented any normalisation of Sino-Indian ties. While 19 rounds of military-to-military and diplomatic talks have taken place between the two sides, the military confrontation across the LAC has shown very little signs that it is moving towards a peaceful resolution.

The Chinese army gets its newfound confidence and assertiveness from China's sustained military expenditure and modernisation, which has been rising every year. In addition to this, President Xi Jinping has changed the existing domestic political set up by abolishing presidential term limits and thereby securing his position for life. This has made him one of the strongest leaders in Chinese history and thus makes him more confident to push for unilateral border settlements.

It is therefore not surprising that the number of Chinese transgressions across the LAC has been on a rise; from 423 in 2015 to 668 in 2019 (Shukla, 2020). It is not only border transgressions, but the number and intensity of the border clashes has been on a rise too. In 2014, just before Xi Jinping's first visit to India, the militaries had a face-off in the Chumar area when the PLA attempted to prevent a canal construction on the Indian side. Another stand-off followed in 2015, in the Depsang plains. The 2017 Doklam clashes in the Bhutan-India-China tri-junction further aggravated the situation as the militaries were in proximity and fully armed for almost 70 days. This build up finally culminated in the violent clashes in the Galwan region in Ladakh in June 2020, which broke the peace and tranquillity of the last four decades across the LAC (Banerjee, 2022).

Given the disputed and complicated border history and war (for more see Menon (2021) and Rao (2021)). it is no surprise that China continues to occupy the central place in Indian military calculations and has been a major driver of Indian military modernisation. The relentless pace of Chinese military modernisation and infrastructure development has further increased the technological gap between New Delhi and Beijing in the last decade, thus making it increasingly essential for New Delhi to modernise or accept China as the stronger actor in the South Asian region.

Regional Influence

- China's Belt and Road Initiative (BRI) and India's response

India has long been considering how to respond to China's expanding power and the Belt and Road Initiative (BRI). The contours for identifying workable solutions to this problem are starting to show. India is gradually moving toward greater cooperation with other South Asian states, something that was unimaginable just a few years ago. India has created new forms of collaboration with Japan, the USA, and Australia within its expanded neighborhood that are positioned either directly or indirectly against China. This change in Indian foreign policy creates new opportunities for cooperation for Germany and Europe.[9]

India only began to debate the implications of the BRI when China deepened its infrastructure engagements with India's neighbors in South Asia and the Indian Ocean region. As New Delhi continued to debate its political calculations on the Belt and Road, there were significant voices on both sides of the political dilemma surrounding whether India should participate in the Belt and Road and the initiative's May 2017 forum.

On the one hand, some proponents of Indian participation pointed to specific ways that India could benefit from the BRI. The most evident example is that the BRI would offer a means of assisting in the financing of the nation's internal infrastructure projects. India's northeastern region, which has historically been geographically isolated from both the rest of the nation

[9] Indian Strategic Studies: 02/10/18. https://www.strategicstudyindia.com/2018_02_10_archive.html

and important cross-border trade routes, may benefit economically the most.[10] For those who support India's involvement in the BRI, the idea that connectivity is growing throughout the Indo-Pacific region emphasizes even more how New Delhi needs to think about how to improve its own economic status when it comes to trade and transportation difficulties in order to stay ahead of the curve.[11] Yet despite these potential benefits, Indian opposition to the BRI appears to have ultimately won out. India's misgivings about Chinese-funded projects through the BRI ultimately come down to a few key concerns. New Delhi is worried that Chinese-funded infrastructure projects may:

1) run afoul of accepted international standards and norms;
2) undermine India's claims to sovereignty over disputed border areas and other security concerns, particularly in relation to China and Pakistan; and
3) grant China greater geopolitical influence and undue economic and diplomatic leverage over the policymaking decisions of India's neighbors in ways that disadvantage India.[12]

India's stance on the BRI was demonstrated by its absence at the Belt and Road Forum. Responding to media queries on whether India was invited to attend the forum, the Ministry of External Affairs (MEA) raised a number of concerns regarding the project. The statement noted that

"We firmly believe that efforts to increase connection must be founded on internationally accepted values, good governance, the rule of law, equality, openness, and transparency. In order to prevent projects from placing communities under unmanageable debt, connectivity initiatives must adhere to the following principles: financial responsibility; balanced ecological and environmental protection and preservation standards; transparent cost assessment; and skill and technology transfer to support the long-term upkeep and management of local communities' assets. The pursuit of connectivity initiatives needs to respect territorial integrity and sovereignty".[13]

Transparency concerns

The Indian government's May 2017 statement conveys the Indian view that the BRI is not based on principles such as good governance, rule of law, and transparency. It also suggests the initiative creates unsustainable debt burdens in some recipient countries. For example, Colombo's increasing Chinese debt is a cause for concern on unsustainable debt burden.26 Furthermore, news reports and studies have shown that China's approach to BRI carries some risk of unsustainable loan practices that could leave some nations saddled with high levels of debt. Hambantota is a glaring example of such unsustainable loans, which ultimately are allowing China to gain significant economic and strategic advantages in the Indian Ocean region.

In a continuation of its response to the forum, India again highlighted its concerns in a June 2017 bilateral meeting with the United States. The India-U.S. joint statement noted that both sides "ensure respect for sovereignty and territorial integrity, the rule of law, and the

[10] China's BRI- potential, challenges, measures with respect to India - INSIGHTS IAS - Simplifying UPSC IAS Exam Preparation. https://www.insightsonindia.com/international-relations/india-and-its-neighborhood/india-china-relations/chinas-bri-potential-challenges-measures-with-respect-to-india/
[11] Will India Join Joe Biden's 'Infrastructure Plan' To Counter Xi Jinping's Ambitious BRI?. https://eurasiantimes.com/will-india-join-bidens-infrastructure-plan-to-counter-xi-jinpings-ambitious-bri/?amp
[12] China's BRI- potential, challenges, measures with respect to India - INSIGHTS IAS - Simplifying UPSC IAS Exam Preparation. https://www.insightsonindia.com/international-relations/india-and-its-neighborhood/india-china-relations/chinas-bri-potential-challenges-measures-with-respect-to-india/
[13] Trajber Waisbich, L. (2021). Re-politicising South-South development cooperation: Negotiating accountability at home and abroad. https://doi.org/10.17863/CAM.72571

environment; and call on other nations in the region to adhere to these principles." This means "supporting bolstering regional economic connectivity through the transparent development of infrastructure and the use of responsible debt financing practices."[14]

Territorial integrity and other security concerns

India is increasingly concerned about China using regional connectivity projects to alter the narratives surrounding disputed territories in its favor. The Indian government’s May 2017 statement claims that China has exhibited a disregard for territorial integrity, particularly with respect to the CPEC, which runs through the disputed territory of Kashmir. According to India, this is a violation of its sovereignty, and participating in the BRI would undermine New Delhi’s position on the dispute, as Beijing supports Islamabad’s view of the dispute.[15]

The CPEC and certain other aspects of the BRI more broadly tend to disregard India’s concerns about sovereignty and territorial integrity. On India’s eastern border, China claims Arunachal Pradesh in its entirety and Ladakh in the north, states under Indian jurisdiction. The 1962 Sino-Indian War was fought over Arunachal and Ladakh, a fact that makes many Indians more suspicious of Beijing’s motives for building infrastructure projects in border regions and in disputed areas. Moreover, India is very wary of China’s efforts to build projects in countries neighboring India (such as Bangladesh, Myanmar, Sri Lanka, and Pakistan), projects that might afford Beijing an added strategic advantage in its rivalry with India. Given the border tensions between India and China, Beijing must demonstrate respect for territorial integrity for India to view the BRI in a positive light.

Diplomatic leverage over India’s neighbors

Strategically, Beijing’s growing expansion in New Delhi’s neighborhood, both in the maritime and continental domain, strengthened India’s resistance toward the Belt and Road project.29 In particular, India is concerned about China’s deepening bilateral relationships with Bangladesh, Myanmar, and Nepal on the continental route and with the Maldives and Sri Lanka along the maritime route. However, given that the Indian Ocean is a primary area of interest for the Indian Navy, the MSR, in and of itself, is a major concern for India. New Delhi was not only beginning to voice its concerns about Beijing’s expansion in India’s neighborhood, both in the maritime and continental domains, but also clarified its stance on the BRI

Conclusion

The political concerns between India and China are deeply rooted in historical, territorial, and strategic dimensions. While the potential for conflict remains, there are also significant opportunities for cooperation that could benefit both nations and contribute to regional stability. Understanding the complexities of their relationship is crucial for policymakers and scholars alike in navigating the future of Asia's geopolitical landscape.

References

- Garver, J. W. (2001). Protracted Contest: Sino-Indian Rivalry in the Twentieth Century. University of Washington Press.
- Shirk, S. L. (2007). China: Fragile Superpower. Oxford University Press.

[14] US backs India's stand on OBOR - India Journal. http://www.indiajournal.com/indo-us/us-backs-indias-stand-on-obor

[15] China’s BRI- potential, challenges, measures with respect to India - INSIGHTS IAS - Simplifying UPSC IAS Exam Preparation. https://www.insightsonindia.com/international-relations/india-and-its-neighborhood/india-china-relations/chinas-bri-potential-challenges-measures-with-respect-to-india/

- Malone, D. M., Mohan, C. R., & Raghavan, S. (Eds.). (2015). The Oxford Handbook of Indian Foreign Policy. Oxford University Press.
- Singh, S. (2019). India-China Relations: The Border Issue and Beyond. Routledge.

ENHANCING LIBRARY SERVICES: KEY DIGITAL SKILLS FOR MODERN LIBRARIANS

- Himanshi Ahuja
Research scholar,
Central University of Haryana

ABSTRACT:

This study was designed to evaluate the digital literacy of university library staff and librarians. This study assesses the variables influencing their digital abilities as well as their ability to build and manage a digital library. The way information services are provided in libraries has drastically changed as a result of the usage of information technology. In order for library personnel to effectively provide digital information to library patrons, they must possess digital abilities in light of the evolving technological landscape in libraries. Additionally; the study offers practical solutions to get beyond such obstacles. In light of the constantly changing digital environment, this study aims to define the digital skills needed for Library and Information Science (LIS) workers. We have covered the fundamental digital skills needed in this paper to become an effective librarian relevant to the digital age and conclusion highlights the significance of embracing technology, developing digital skills, and utilizing digital tools to improve library services and user experiences is drawn on how to become a successful librarian relevant to the digital age.

Keywords: Digital Skills, Digital competencies, Librarians, LIS professionals, Technological skills, Digital literacy

INTRODUCTION:

The way that information services are delivered in libraries has undergone a dramatic shift due to the usage of information technology (Gottesman, 2002). In order for library staff to effectively provide digital information to library patrons, they must have digital abilities in light of the evolving technological scenario in libraries. Professionals in libraries need to be educated and talented in order to use e-resources and provide web-based library services. They need have expertise creating and running institutional repositories and digital libraries (Thanuskodi, 2011). To operate in an atmosphere of a digital library, they must possess strong ICT abilities and digital competencies. Web resources, electronic databases, and electronic journals should all be accessible. Users of libraries must have access to the internet and online services (Khademizadeh, 2012). According to Choi and Rasmussen (2006), librarians of the future will be more knowledgeable about science and technology. According to Lin and Abels (2010), librarians need to have multidisciplinary abilities in the context of digital libraries. We have the chance to investigate our mission and establish virtual classrooms for, among other things. (page 22). According to a 2005 study by Bawden et al., creating digital libraries requires practical skills for metadata development, digital interface design, and global digital library operations. Digital skills, according to Trepanier (2012), are the aptitude for using digital instruments, which includes computer hardware and software, and for putting the right security measures in place to safeguard digital data. It comprises the necessary abilities to find, pick, and access digital information.The assessment highlights the requirement for competent librarians to function in a digital library setting. To create and oversee a digital library, librarians need to be technically proficient in addition to having strong practical skills. Thus, the goal of the current study is to evaluate librarians' digital competencies for creating and overseeing digital libraries in universities.

1. To evaluate professionals' digital competencies for developing and overseeing digital libraries.
2.To determine what elements or problems are influencing their digital skills.

3. To investigate workable ways that librarians might improve their digital literacy.In this study we will do content analysis of previous studies on the relevant topic of our study. (Khan & Bhatti, 2017).

LITERATURE REVIEW:

Digital skills are defined as the capacity to use digital tools, communication tools, or networks in computerized environments and to locate, assess, use, and create information (Chinien and Boutin, 2011). Okeji et al., 2019; Shank and Bell, 2011) confirmed that Digital skills are the ability to comprehend and apply information in various formats from a variety of sources through computers. According to Okeji et al. (2019), it also includes the capacity to read and comprehend media, replicate data and pictures through digital manipulation, and assess and apply newly acquired information from digital settings. Furthermore, digital skills include the capacity to operate computer hardware and software, communication applications, suitable security measures, and digital information protection, according to UNESCO (2018). (Hamad et al., 2020)To operate and maintain the infrastructures and services of electronic libraries, one must possess digital abilities. As a result, it is critical to evaluate the degree of digital literacy among Jordanian academic librarians. It's also critical to look into how digital literacy affects Jordanian librarians' adoption of technology. To get the necessary information, a questionnaire was created and sent to Jordanian university libraries. The findings show that the librarians have a high degree of digital proficiency. The outcome also demonstrates that librarians' primary obstacle to acquiring the necessary skills is money. Most notably, the degree of digital literacy has a favorable impact on how well Jordanian academic librarians adopt and use technology. (Bharti, 2019) Over the last fifteen years, the digital library has grown and changed, and now, both the digital library and the digital information are playing an increasingly important role. With the rise of digital resources and information, everything is now readily available online and users may connect to online information with ease thanks to information and communication technology, or ICT. This has an impact on e-learning and digital learning. India is a leader in the world when it comes to the usage of digital information compared to other nations. Over the past three to six years, our advancements in digital information have transformed life and taken the lead in all areas of education and library services. It's critical in the current day to separate accurate information from digital material found online. Researchers may now access digital content in a variety of formats from modern digital libraries, enabling higher-quality learning and study. These days, a lot of reputable publishers are digitizing material and making it available to consumers in the form of digital databases and online resources. This kind of information is highly beneficial, and academics and research scholars utilize libraries around the clock to use them as research tools. (Khan & Bhatti, 2020) This study set out to evaluate the digital literacy of university library staff librarians.This study assesses the variables influencing their digital abilities as well as their ability to construct and manage a digital library. In addition, the study offers doable strategies to get beyond such obstacles. A mixed-method research strategy, grounded in both qualitative and quantitative research, was employed in this study. The first step involved defining the study topic and developing the research objectives through a thorough analysis of relevant literature. SPSS software was used to evaluate the data after they were gathered via a questionnaire. In order to gather qualitative information from 50 important specialists, an interview guide was created. The data analysis process employed a thematic approach. Pradhan,D.S.(2023) In the ever-changing digital world, this chapter aims to outline the insights into the digital competences needed for Library &

Information Science (LIS) professionals. The final part of this chapter highlights the significance of welcoming technology, developing digital skills, and utilizing digital tools to improve library services and user experiences. The authors have covered the fundamental digital competencies needed to become an effective librarian significant to the digital age.

KEY DIGITAL SKILLS FOR LIBRARIANS:

Here are some key skills described for librarians to make them digital proficient (Hamad et al., 2021).

1. Knowledge of how to evaluate suitability of software for digital projects.
2. Knowledge of digital preservation.
3. Knowledge of data security by keeping back-up of digital contents in case of any disaster.
4. Competencies in building digital collections.
5. Ability to manage and design databases.
6. Knowledge of digital content management (digital content management systems).
7. Ability to create different file formats (PDF, gif, bitmap, . . .).
8. Skills of digitizing the source of various information such as books and university theses.
9. Capability of handling big data.
10. Ability to use open source software.
11. Being able determine a piece of software's fit for a digital project.
12. A comprehension of digital conservation.
13. Maintaining data safety awareness by maintaining digital content backups in case of an emergency.
14. The capability to create digital collections.
15. The capacity to create and administer databases.
16. Familiarity with digital content management (and its systems).
17. The capacity to generate various file types, such as PDF, gif, bitmap, etc.
18. The ability to digitally preserve a variety of information sources, including books and theses from universities.
19. The capacity to manage large amounts of data.
20. Software that is distributed as open source can be used.

NEED FOR DIGITAL SKILLS FOR LIS PROFESSIONALS:

The development of technology has influenced nearly every facet of library and information center operations in this digital age. Users can access information resources in digital format, and the majority of services are automated. This has forced libraries to adopt the newest methods, instruments, and technological advancements in nearly all facets of their operations, including the creation, arrangement, distribution, and archiving of collections. Therefore, in order to stay current in this digital world, LIS experts need to develop their digital skills. The development of ICT has also altered user behavior and information needs. As a result, LIS practitioners must embrace and make use of latest instruments, methods, and technology. Therefore, digital proficiency is required for LIS personnel. Furthermore, there are a number of connected factors that call for digital skills to handle**,** Pradhan, D.S.(2023)**.**

1. Digital technology communication and knowledge explosion.
2. Electronic and online publishing.
3. Networked information sharing and organizations.
4. Automation of libraries and digital archiving.
5. Open source and open access initiatives.

6. A digitally literate user community with a wide range of needs.

Strategies for Acquiring Digital Skills:

A library professionals cannot continue to practice without at least a basic understanding of digital skills, as was indicated in the introduction and need for digital skills sections above. Initiatives to obtain digital capabilities include the following:

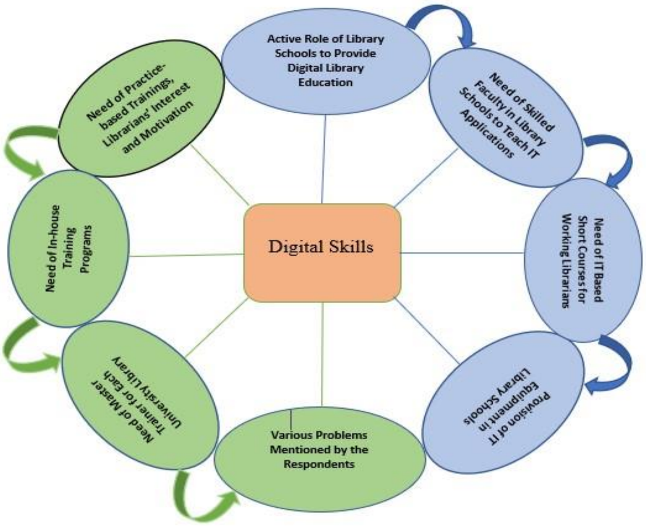

Source of the image: **https://digitalcommons.unl.edu/libphilprac/4230**

According to the current state of university librarians' digital skills, the majority of them are only capable of creating and managing a rudimentary digital library. The main causes in this respect are the poor IT infrastructure in library schools, the lack of IT-savvy staff, the inadequate training programs, and the dearth of self-interest and self-motivation among librarians.

It is advised that university library librarians'observe the following real-world solutions to increase digital skills for librarians:

1. Seek advice from the Higher Education Commission's (HEC) digital library team to conduct librarian training programs.
2. Hire master trainers for each university library to train library professionals.
3. Practice-based training and short courses should be made available. Providing internal training programs for librarians; promoting librarians' attendance at training and acquisition of digital skills out of personal gain and motivation for oneself.

Barriers to Developing Digital Skills:

The advantages of having digital skills are both essential and amazing, but acquiring them can be difficult by a number of problems, including financial limitations, the digital divide, resistance to change on both a personal and organizational level, etc. Here are a few of the difficulties:

Technologies Obsolescence: librarians and information specialists face difficulties in keeping up with emerging platforms and tools as well as the changing needs of library users.

Unwillingness to Change LIS staff's capacity to become digitally capable may be affected by resistance to change. This opposition could be the result of fear, a lack of desire, or the

conviction that traditional library services could eventually be superseded by digital technologies.

Restricted Choices for Professional Growth and Training LIS professionals frequently encounter obstacles in obtaining professional development and training courses that are designed to improve their digital abilities. This lack of availability hinders their capacity to learn the essential digital skills, **,**Pradhan,D.S.(2023)**.**

CORE SKILLS FOR LIBRARY AND INFORMATION SCIENCE PROFESSIONALS:

Identifying and retrieving the appropriate information: Identifying and retrieving the appropriate information quickly is the primary competency needed for a library professional. To properly accessibility and analyze information, LIS workers must be expert at using a variety of digital tools and resources. They are skilled in conducting research and finding appropriate resources for customers using online databases, search engines, and digital libraries. The digital proficiency of LIS personnel includes understanding various search operators, keywords, sophisticated database searching tools, and discovery systems.

Classification and cataloging of digital content: Nearly all libraries now use software to manage their collections, with very few exceptions. Union catalogs, consortia, and networked library services are examples of cooperative endeavors that libraries are gradually entering. To make sure everyone can find and access materials with ease, they can build and manage digital catalogs and database. Standardized online resource cataloging and classification systems should be known to LIS practitioners. It helps to have knowledge of the Z39.50 protocol, copy cataloguing sources, and categorization systems such as OCLC Classify.

Data Preservation techniques: LIS staff are equipped with the necessary knowledge and abilities to preserve and manage digital items, particularly as library collections become more and more digitally connected. In addition to the publishers' and distributors' customised collections, libraries are beginning to experiment and explore new ways to produce and maintain their digital material. The data digitization process, system settings, document formats, digital library software, and other related topics like licensing and Digital Rights Management (DRM) related to digital objects/resources must all be well understood by LIS professionals. guaranteeing the accessibility and integrity of digital materials across time, as well as their long-term preservation.

Instruction in digital literacy: Of the three parties involved—users, resources, and LIS staff—the last has always been crucial in matching the appropriate resource with the appropriate user. This is also reflected in the digital world, where library patrons are greatly assisted by LIS personnel in developing their digital literacy. They can assist customers navigate the digital environment, perform efficient internet searches, and critically assess digital content by offering training and education on a variety of digital tools, technologies, and resources.

Electronic resource management: While they are more expensive, digital or online resources provide several benefits over traditional print resources, such as multiple access, remote access, and 24/7 availability. Online resources, such e-books, e-journals, and databases, have a lot more problems than print resources do. These problems include compatibility formats, usability and visibility, intricate pricing structures, and licensing.

As a result, maintaining internet resources and other digital collections is required of current LIS workers. They should be conversant with Electronic Resource Management Systems and

capable of handling duties including licensing and acquisition, guaranteeing library user access, and monitoring remote access systems that require authentication.

Organization of information and metadata: LIS specialists are skilled at applying metadata standards to describe and organize digital resources. They produce and maintain metadata for digital resources, facilitating users' effective material search and retrieval. the LIS specialists should thus be proficient in the organization and cataloging of digital resources utilizing digital cataloging systems and cataloging formats such as MARC format, the Resource Description and Access ISBD, FRBR, AACR, Dublin Core, and other metadata standards.

Virtual services and digital references: Technology has offered LIS specialists an opportunity to deliver information as quickly as feasible. Proficiency in offering online reference services, such as responding to user questions through chat, email, or other digital channels. Ask-a-Librarian services that need tickets for supervised and prompt replies, as well as chatbots and other powered by artificial intelligence digital communication technologies, are available to help customers remotely with research, information resources, and technology-related concerns.

Electronic content creation: LIS personnel are involved in the development of digital content, which includes informational brochures, research guides, instructional materials, and library websites. They could also be qualified to create online exhibitions, organize digital collections, and support projects promoting digital research. In addition to library websites, there are other channels, such as social media platforms, where content may be produced in the form of educational posts, films, etc. to highlight the resources and services offered by the library.

Data management and visualization: LIS workers must possess the abilities to manage data, such as data curation, data cleaning, and data visualization, in light of the world's growing reliance on data. It will enable them to support data set discovery, access, and efficient usage by academics and library users. Research heavily relies on the usage of statistical software, such as SPSS, R, Stata, etc., thus being familiar with it practically can improve the services that customers receive from research.

Digital communication and collaboration: LIS professionals should have knowledge about using digital communication channels like social media platforms, online communities, professional networks, webinars, video conferencing, email, and instant messaging/chats. This will allow them to share knowledge, exchange ideas, and stay up to date on new developments.

Academic library LIS specialists should also be familiar with various citation formats, reference management programs such as Endnote, Mendeley, and Zotero, and a basic understanding,

LIS specialists should also be familiar with recently developed ideas like big data, cloud computing, text and data mining, etc

Conclusion: in this study we came at conclusion that digital skills and literacy is very significant for all library and information science professionals , In light of the constantly changing digital environment, this study aims to define the digital skills needed for Library and Information Science (LIS) workers. We have covered the fundamental digital skills needed in this paper to to become an effective librarian relevant to the digital age and conclusion highlights the significance of embracing technology, developing digital skills, and utilizing digital tools to improve library services and user experiences is drawn on how to become a successful librarian relevant to the digital age.

References:

- Khan, S. A., & Bhatti, R. (2017). Digital competencies for developing and managing digital libraries: An investigation from university librarians in Pakistan. *The Electronic Library*, *35*(3), 573–597. https://doi.org/10.1108/EL-06-2016-0133.
- Hamad, F., Al-Fadel, M., & Fakhouri, H. (2021). The effect of librarians' digital skills on technology acceptance in academic libraries in Jordan. *Journal of Librarianship and Information Science*, *53*(4), 589–600. https://doi.org/10.1177/0961000620966644.
- Chand Bharti, M. (2019). Role of digital library and information centers in modern education system and research development. *IP Indian Journal of Library Science and Information Technology*, *4*(1), 1–4. https://doi.org/10.18231/j.ijlsit.2019.001.
- Pradhan, Sarbada & Rai, Avijit. (2023). Digital Capability for Library and Information Science Professionals: A Narrative Discourse.
- Okeji, C. C., Tralagba, E. C., & Obi, I. C. (2019). An investigation of the digital literacy skills and knowledge-based competencies among librarians working in university libraries in Nigeria. *Global Knowledge, Memory and Communication*, *69*(4/5), 311–330. https://doi.org/10.1108/GKMC-05-2019-0054.
- Gorny et al. (2010).The state of development of digital libraries in Poland, Program: Electronic Library and Information Systems, 44(3), pp. 207-214.
- Yakel, E. (2007). Archives and manuscripts digital curation, OCLC Systems and Services, 23(4), pp. 335-340.
- Raju, J. (2014). Knowledge and skills for the digital era academic library, The Journal of Academic Librarianship, 40, pp. 163-170.
- Lin, X. and Abels, E. (2010). Digital library education Lab, Journal of Education for Library and Information Science, 51(2), pp. 120-124.
- Yakel, E. (2007). Archives and manuscripts digital curation, OCLC Systems and Services, 23(4), pp. 335-340.
- Tennant, R (1999) Digital libraries. Skills for the new millennium. Library Journal 124(1) 39. Retrieved from EBSCOhost.
- Venkata Ramana,P.(2004). Information Technology: Applications in Libraries,New Delhi: ESS Publication.
- Powell, R.R. and Connaway, L.S. (2004). Qualitative research. Basic research methods for librarians, 4 th ed. London: Libraries Unlimited. pp.125.
- Rafiq, M. and Ameen, K. (2012).Digitization in university libraries of Pakistan, OCLC Systems and Services: International Digital Library Perspectives, 29(1), pp. 37-46.
- Khademizadeh, S. (2012).Use of information and communication technology (ICT) in collection development in scientific and research institute libraries in Iran: A study, International Journal of Advancements in Research and Technology, 1(3), pp. 2278-7763.
- Shaw, M. K. (2016). Library technology and digital resources: an introduction for support staff. Rowman & Littlefield. 12. Smith, D., Hurd, J. and Schmidt, L. (2013), Developing core competencies for library staff: how University of South Florida library re-evaluated its workforce, College & Research Libraries, 74(1), 14-35.
- Smith, D., Hurd, J. and Schmidt, L. (2013), Developing core competencies for library staff: how University of South Florida library re-evaluated its workforce, College & Research Libraries, 74(1), 14-35.

मेघदूत में प्रकृति सौन्दर्य

– **डा. देवेन्द्र प्रताप सिंह**
असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृत विभाग
गनपत सहाय पी.जी. कालेज
सुलतानपुर, उत्तर प्रदेश

कवि कुल गुरु कालिदास की सर्वतोमुखी प्रतिभा का चूडान्त निदर्शन मेघदूत है। मेघदूत कालिदास की प्रौढ एवं परिष्कृत कृति है। इसमें कवि की प्रौढ़ कल्पना उदात्त भावना, परिष्कृत शैली एवं कोमलकान्त पदावली का सामंजस्य दिखाई देता है। यह कवि की कल्पना का मनोरम प्रसून है। कविता–वनिता के लावण्य की अभिवृत्ति अपना विलास की विद्वता, कोमल भावों की सुकुमारता, अभिव्यक्ति एवं मधुरता का सतत प्रवाह जो मेघदूत में मिलता है, वह अन्यत्र अप्राप्य है। उस भावाभिव्यक्ति में यक्ष तो कारण मात्र है वास्तविकता तो यह है कि वियोग – आकुल मानव का सकल अन्तः संसार हमारे चर्म–चक्षु के सामने प्रस्तुत किया गया है। मेघदूत के विषय में प्रसिद्ध विद्वान M-Fauche ने कहा है कि – There is nothing as perfect the elegiac Literature of Europe as the Meghduta of Kalidasa[1] मेघदूत में वर्णित गिरि, नदि नगरी, ग्राम भूमि आदि सभी का चिर आलिंगन उकेरित प्रकृति को उद्‌गीर्ण करने वाला है। जिसमें सर्व प्रथम प्रकृति का एक महत्त्वपूर्ण अंश मेघ ही है, कभी चिर वियोग के कारण गर्माश्रधारा प्रवाहित करते हुए अपने प्रिय मित्र गिरि का आलिंगन करता है। उसकी वाष्पकण उसकी अश्रुधारावत प्रतीत होती है।

काले – काले भवति यस्य संयोगमेत्य ।
स्नेहव्यक्तिरश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥[2]

Dr- A- B- Keith का कथन है कि हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हम– "The message would have been read very differently, had it been sent, as in Schiliars Maria Stuart, by a helpless captive awaiting in resignation or despair an includable doom."[3]

'मेघदूतम् संस्कृत साहित्य का वह जाज्वल्यमान हीरक है, जिसकी प्रभा समय के प्रवाह से और भी अधिक बहती जाती है वह बड़ी ही आनन्दमयी घड़ी थी, जब महाकवि कालिदास ने इस अमरकाव्य की रचना की थी। वाह्य प्रकृति की मनोरम झाँकी प्रस्तुत करने में अन्तस्तल में सतत उदय होने वाली भावों के चित्रण में यह काव्य अतुलनीय है। किसी विरह से व्याकुल प्रेयसी के पास मेघ को प्रेम का सन्देशवाहक दूत बनाकर भेजने की कल्पना ही विश्व के साहित्य में अपूर्व कोमल तथा हृदयावर्जक है।

मेघदूत में प्रकृति चित्रण आरम्भ में ही रामगिरि आश्रम के उस प्रदेश से होता है, जहाँ के वृक्ष कोमल छाया वाले एवं तालाब के जल सीता जी के स्नान से पावन है। मेघदूत के पूर्वभाग (पूर्वमेघ) में कवि प्रकृति के सुमधुर चित्रण में ही लगा रहता है। यक्ष द्वारा मेघ के प्रति किया हुआ मार्ग–वर्णन प्रकृति की जो रमणीय झाँकी प्रस्तुत करता है, उसे देखकर सहृदय का हृदय आनन्द विभोर हो जाता है। अलकापुरी का मार्ग मेघ को यक्ष इस प्रकार बताता है कि–

कश्चितकान्ता विरहगुरुणा सर्वाधिकारात्प्रमत्तः
शापेनास्तङ्गमितमहिमा वर्ष भोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनक तनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।[4]
छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननात्रैः
त्वय्यारुढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे।
नूनंयास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थाम्
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः।।[5]

मेघ जिस–जिस मार्ग से होकर आगे की तरफ बढ़ता जाता है वह उस उस जगह अपनी छाप छोड़ता जाता है। सारंगों द्वारा मेघ के मार्ग की सूचना ऐसे प्राप्त हो जाती है कि जब मेघ वर्षा करके आगे बढ़ता है तो जल बरसने के कारण पुष्पित कदम्ब को भ्रमर मस्त होकर देख रहे होंगे, प्रथम जल पाकर

मुकुलित कन्दली को हरिण खा रहे होंगे और वर्षा ऋतु में पहली बार वर्षा जल के कारण पृथ्वी से निकल रही गन्ध को गज समूह सूंघ रहे होंगे, इस प्रकार भिन्न–भिन्न क्रियाओं को देखकर मेघ के गमन मार्ग का स्वतः अनुमान हो जाता है।[6] प्रकृति से मानव जाति का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यही कारण है कि वह मनुष्य के अन्तःकरण को प्रभावित करती है। मेघदूत में कवि ने इसी तथ्य को उजागर किया है–

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः ।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।।[7]

अर्थात् मेघ को देखकर सुखी जनों का चित्त जब विचलित हो जाता है तो फिर जो वियोगी जन हैं उनका कहना ही क्या, इसका तात्पर्य यह हुआ कि उनमें तो विचलन स्वाभाविक ही है। कालिदास ने प्रकृति को मनुष्य के सुख–दुःख में सहभागिनी निरुपित किया है।

नदी की सुरम्यता और उसके मधुमय अवदानों ने कवि को इतनी विमुग्धता और तन्मयता प्रदान की है कि उसे नदी नायिका सी प्रतीत होती है। यक्ष मेघ से कहता है कि हे मेघ ! उज्जयिनी के मार्ग में निर्विन्ध्या नदी बहती है जो तुम्हें अपने हाव–भाव से अपनी ओर आकृष्ट करेगी और किस प्रकार तुमको अपनी ओर आकृष्ट तो सुनो तरंगों के हलचल के कारण शब्दायमान पक्षियों की पंक्ति रूपी करधनी को धारण करने वाली, स्खलित प्रवाह के कारण सुन्दरतापूर्वक बहने वाली अर्थात् मस्त होकर चलने वाली और भंवर रूपी नाभि को दिखाने वाली वह निर्विन्ध्या नदी रूपी नायिका से मिलकर तुम रस अवश्य प्राप्त करना, क्योंकि कामिनियों का हाव–भाव प्रदर्शन ही रतिप्रार्थना का वचन होता है।[8] फिर तुरन्त ही कवि ने निर्विन्ध्या को विरहिणी के रूप में भी चित्रित किया है। वेदना की व्याकुलता का यह अनूठा प्रकृति–चित्रण है। निर्विन्ध्या नदी की धारा वेणी की तरह पतली हो गयी है और तट पर के पेड़ों के पीले पत्ते झड़ कर उस पर आ गिरे हैं, जिससे उसकी कान्ति पीली पड़ गयी है। इस प्रकार निर्विन्ध्या विरही कृशाङ्गी की तरह जान पड़ती है। यह मेघ–प्रियतम का ही सौभाग्य है कि उसके लिये कोई घुल–घुल कर क्षीण होती जा रही है तब यह मेघ का धर्म हो जाता है कि वह वर्षा करके उसकी इस कृशता को दूर करे।

वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग ! विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती कार्श्यं
येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ।।[9]

महाकवि कालिदास की प्रवृत्ति भावों को उद्दीप्त करने के लिये प्रकृति के रमणीय चित्र उपस्थित करने की ओर अत्यधिक आग्रह रखती है। यही कारण है कि कालिदास ने प्रकृति के उपादानों का आलम्बन रूप में ग्रहण कर काव्य को चिरनूतन सौन्दर्य प्रदान किया है। मानव जीवन की चिरन्तन लालसाओं की उपेक्षा न कर कवि ने उसकी अनिवार्य अपेक्षा के आग्रह का आदर किया है।

शिप्रातट की वायु के माध्यम से यक्ष अपनी प्रियतमा को जिस प्रकार सन्देश भिजवाता है वह अत्यन्त सुमधुर, आकर्षक एवं चमत्कारिक है। सुबह–सुबह शिप्रातट पर सारसों का स्पष्ट मधुर स्वर क्षण–प्रतिक्षण बढ़ता जा रहा है और खिलते हुए कमलों के से सुशोभित और शरीर को अच्छी लगने वाली शिप्रा की वायु याचना करने में चापलूस प्रियतम की भाँति रतिश्रान्त रमणियों की थकावट को दूर कर देता है।[10] पुनः यक्ष कहता है कि हे मेघ! मार्ग में जब तुम आगे बढ़ोगे तो तुम्हें गम्भीरा नदी मिलेगी। तुम उस गम्भीरा नदी के स्वच्छ जल में स्वभावतः प्रवेश कर जाना क्योंकि तुम कुमुद–पुष्प के समान धवल, चंचल मछली के उलटने रूपी चितवन को धृष्टता से विफल करने योग्य नहीं हो।[11] अपपम पुनः आगे सरस्वती नदी का जल मिलेगा जो तुम्हें भीतर से तो शुद्ध कर देगा लेकिन तुम्हारी वाह्य कालिमा पूर्ववत् बनी रहेगी। वहां से आगे जाने पर तुम्हें कनखल के समीप हिमालय से उतरी हुई तथा सगर पुत्रों को स्वर्ग भेजने वाली गंगाजी के पास जाना, जिन्होंने फेनों के द्वारा पार्वती जी के मुख पर की भ्रू–भंगिमा का मानो उपहास करके, चन्द्रमा को छूती हुई तरंगों रूपी हाथों से युक्त होकर शिवजी के केशों को पकड़ लिया है।

प्रकृति–सुन्दरी के सौन्दर्योपासक कालिदास अमूर्त को मूर्त रूप देने में बड़े दक्ष हैं। उन्होंने नदियों को स्वाधीनपतिका तथा मेघ एवं पर्वतों को दक्षिण अनुकूल नायक के रूप में बड़े चमत्कारपूर्ण ढंग से उपस्थित किया है। प्रकृति के साधारण उपादानों यथा नदी, पहाड़ आदि ने कलाकार के हाथों में महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर लिये हैं।मेघदूत का पूर्व भाग वाह्य प्रकृति के सौन्दर्य तथा कमनीयता का उज्ज्वल प्रदर्शन करता है तो उत्तर मेघ मानव हृदय के सौन्दर्य तथा अभिरामता का विमल चित्र प्रस्तुत करता है। यक्ष का प्रेम–सन्देश उसके कोमल हृदय का, स्वाभाविक स्नेह का तथा नैसर्गिक सहानुभूति का एक मनोरम प्रतीक है और इस उदात्त प्रेम का अभिव्यंजक काव्य सुषमा के भाव सौष्ठव से मण्डित यह ग्रन्थ रस का अक्षम्य स्रोत है जो दिन–प्रतिदिन और क्षण–प्रतिक्षण आनन्दातिरेक ही करता है।उत्तर मेघ का आरम्भ कवि अलकापुरी के वर्णन से करता है। इसके वर्णन में वहां की प्रमुख छः ऋतुओं का वर्णन एक ही छन्द में चित्रित किया है जो इस प्रकार है–

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।।[12]

अर्थात् जहाँ अलकापुरी में रमणियों के हाथ में क्रीडाकमल, बालों में नये–नये कुन्द पुष्पों का बन्धन, मुख पर लोध के फूलों के पराग से गौरवत्व को प्राप्त हुई शोभा, जूड़े में नये कुरबक के फूल, कानों पर सुन्दर शिरीष के फूल और मांग में तुम्हारे आगमन से वर्षा ऋतु में खिलने वाले कदम्ब के फूल रहते हैं। इस प्रकार अलका में षड्ऋतुओं की निरन्तर अवस्थिति की विलक्षण कल्पना को बड़ी निपुणता से साकारता दी गयी है। हम महाकवि कालिदास को प्रकृति की उपदेशिका के रूप में भी पाते हैं। वे प्रकृति से प्राप्त होने वाले सत्य का स्थान–स्थान पर उल्लेख करते हैं जो मानव जीवन का मार्ग निर्देश करती है एवं आदर्श प्रस्थापित करती है। मेघ बिना कुछ कहे चातकों को वर्षा का जल प्रदान करके उपकार करता है–

"निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः।
प्रयुक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ।।"[13]

पपीहा नामक पक्षी के जल मांगने पर मेघ बिना उत्तर दिये ही सीधे जल ही देता है क्योंकि कहा भी जाता है कि जो सज्जन पुरुष होते हैं उनसे अगर कुछ मांगा जाये तो वे मुख से कुछ कहे बिना ही काम को पूरा करके ही उत्तर देते हैं। इसके अतिरिक्त अलका के सदैव खिलने वाले फूलों एवं भौरों के गुंजन से युक्त वृक्षों, हंसों की कतारों से घिरी कमलिनियों, चमकने वाले पंखों से युक्त तथा कलरव करने वाले मयूरों एवम् अन्धकार से रहित धवल–चन्द्रिकामयी रजनियों का सुन्दर वर्णन किया गया है। इस भांति सम्पूर्ण मेघदूत प्रकृति के भव्य चित्रों से भरा हुआ है।

निष्कर्षः रूप में हम यह कह सकते हैं कि कालिदास के प्रकृति वर्णन में अनेक वैशिष्ट्य हैं,कवि मानव सौन्दर्य की तीव्रता तथा यथार्थता के अभिव्यंजन के निमित्त प्रकृति का आश्रय लेता है,तो कहीं यह प्रकृति के ऊपर मानव भावों तथा व्यापारों का ललित आरोप करता है। कहीं वह प्रकृति और मानव के बीच परस्पर गाढ़ मैत्री सहज सहानुभूति तथा रमणीय रम्यात्मक वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ता है तो कहीं प्रकृति को भगवान की ललित लीला का निकेतन मानकर आनन्द से विभोर हो जाता है।

निःसन्देह कालिदास प्रकृति के अन्तस्थल के सूक्ष्म पारखी महाकवि हैं जिनकी दृष्टि प्रकृति के सौम्य रूप माधुर्यतम प्रवृत्ति स्निग्ध सौन्दर्य के ऊपर रीझती है तथा उग्रता और भीषणता से सदा पराङ् मुख रहती है। कालिदास का मेघदूत वास्तव में एक अमूल्य रत्न है। जो कल्पना की आधारशिला पर निर्मित प्रसाद है। निःसन्देह संस्कृत साहित्य की यह गीतिकाव्य परम्परा हृदय स्पर्शी ललित एवं मधुर भावों की सृष्टि करने में समर्थ है। अतः यह कहा जा सकता है कि महाकवि कालिदास ने मेघदूत में भावाभिव्यक्ति, ज्ञेयता, मधुरता, सरसता एवं अनुभूति का सफल चित्रण कर गीतिकाव्य को एक श्रेष्ठ काव्य मंजूषा परम्परा में स्थान दिया।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–

1. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास पेज नं.–526 ।

2. मेघदूत 1/12
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास ए.वी.कीथ पेज नं.–38
4. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/1
5. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/18
6. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/2
7. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/3
8. वीचीक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
   संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
   निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः सन्निपत्य
   स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु।।– महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/29
9. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/30
10. दीर्घीकुर्वपटु मदकलं कूजितं सारसानां
    प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
    यत्र स्त्रीणां हरित सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
    शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः।।– महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/32
11. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/44
12. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 1/53
13. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 2/2
14. महाकवि कालिदास, मेघदूतम्, 2/57

खंड–13, अंक–49, वर्ष–2024 (जनवरी–मार्च, 2024) आईएसएसएन : 2320–2467, आईएफ: 5.6

राम की शक्ति पूजा : आम आदमी की व्यथा कथा

– **डॉ. राजेश कुमार सेठिया**
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
शहीद हरचंद नाइक शासकीय महाविद्यालय,
तोकापाल, जिला–बस्तर (छत्तीसगढ़)

सारांश

निराला (1896ई.–1961ई.) छायावाद (1918ई.–1936ई.) के प्रतिनिधि कवि हैं। छायावादी कविता राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति थी तथा द्विवेदी युगीन साहित्यिक परिस्थितियों के विरूद्ध विद्रोह की उपज थी। विद्रोह का यह भाव निराला में सर्वाधिक था। निराला ने छायावाद को नवजागरण का संदेशवाहक माना था। निराला के काव्य में वस्तुगत छायावादी प्रवृत्तियां– आत्मभिव्यक्त रूढियों से मुक्ति, रहस्यवाद, प्रकृति प्रेम, नारी स्वातंत्र्य की भावना, राष्ट्रीयता की भावना विद्यमान है।

निराला के काव्य में छायावादी शिल्पगत प्रवृत्तियों में कल्पनाशील चित्रात्मकता, नाद सौंदर्य, संगीतात्मकता, लाक्षणिकता, प्रतीकात्मकता आदि देखने को मिलती है। छायावादी शिल्प की दृष्टि से ही नहीं आधुनिक कविता के विकास में भी मुक्त छंद निराला की अमूल्य देन है। यह उनकी छंद संबंधी प्रयोगशीलता का सर्वोच्च स्तर है। निराला लिखते हैं "मुक्त छंद तो वह है, जो छंद की भूमि में भी रहकर मुक्त है........ मुक्त छंद का सर्मथक उसका प्रवाह ही है। वही उसे छंद सिद्ध करता है उसका नियम राहित्य उसकी मुक्ति है। निराला छंद मुक्ति व मानव मुक्ति में गहरा संबंध देखते है। 'परिमल' की भूमिका में वे लिखते हैं, "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है मनुष्यों की मुक्ति कार्यों के बंधन से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छंदों के अनुशासन से अलग हो जाना है।" मुक्त छंद स्वाधीन चेतना और स्वछंद भाव की देन हैं, निराला में ये दोनों प्रवृत्तियां स्पष्टतः दिखाई देती है।

मूल भाब्द : राम की शक्ति पूजा, छायावादी कविता, निराला, रहस्यवाद, प्रकृति प्रेम, नारी स्वातंत्र्य की भावना, राष्ट्रीयता की भावना।

प्रस्तावना

राष्ट्रीय जागरण का स्वर निराला की रचनाओं में आरंभ से ही विद्यमान है। देश की गुलामी और उससे मुक्ति उनकी मूल चिंता है निराला के काव्य में जागरण के विविध पक्ष समाहित हैं। उनके काव्य में साम्राज्यवाद और सामंतवाद विरोधी स्वर सुनाई पड़ता है। उनमें भारतीय परंपरा और संस्कृति के प्रति गहरा गौरव बोध है। रूढियों से मुक्त होने की प्रबल आकांक्षा निराला के काव्य की मूल विशेषता है। निराला ने दलित और स्त्री जागरण का भी प्रभावी संदेश दिया है। विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर और स्वामी विवेकानंद का सर्वाधिक प्रभाव निराला की कविताओं में विद्यमान है।

निराला की शुरूआती रचनाओं की काव्यभाषा में संस्कृत पदावली के साथ सामासिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। जैसे– 'जूही की कली', 'तुम और मैं'। राम की शक्ति पूजा और तुलसीदास जैसी लंबी कविताओं में भी संस्कृत पदावली के साथ सामासिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। निराला ने बाद की कविताओं में मुक्त काव्य लिखने का प्रयास किया है। इन कविताओं की भाषा सामासिक पदावली से हटकर सहज देशज रूप में दिखाई देती है।

काव्य का शिल्प समयानुसार परिवर्तित होता है, या कहें कि परिवर्तन की मांग करता है। शिल्पगत परिवर्तन ही साहित्य को जीवित रखता है। आज परिवर्तन की गति बहुत तेज है। यह परिवर्तन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तेजी से हो रहा है। विचारों के स्तर पर भी परिवर्तन की गति तीव्र है।

बदलती भावभूमि के अनुसार कविता ने अपना रूपाकार बदल दिया। परम्परा से चली आ रही प्रचलित काव्य विधाओं से अलग विधा का जन्म 'लम्बी कविता' के रूप में हुआ है। जिसके कारण कविता के इतिहास में एक नए अध्याय की शुरुआत हो गयी है।

डॉ. नरेन्द्र मोहन के अनुसार लम्बी कविता उसे कहेंगे– ''जिसमें नए जीवन विधान की संगति हो, और जो परम्परागत रूप विधान की रूढियों से मुक्त भी हो, जिसमें नए सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो, और जो आधुनिक परिस्थिति और संवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित भी हो''। इनकी दृष्टि में लम्बी कविता आज काव्यगत अनिवार्यता बन चुकी है।

डॉ. रामदरश मिश्र ने लम्बी कविता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''लम्बी कविता वह है, जो आज के जीवन के कई–कई घुमावदार मोडों से गुजरती हुई जटिल यथार्थ का बोध और अनुभूति को उभारती है।''

लम्बी कविता की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए डॉ. शिवकुमार शर्मा लिखते हैं कि, ''लम्बी कविता में अन्तर्द्वन्द्व या कवि मानस का अन्तःसंघर्ष पूरी भाव प्रवणता के साथ मुखरित होता है। कवि का यह आत्मसंघर्ष व्यक्तिपरक एवं समष्टिपरक दोनों रूपों में संभव है। कभी–कभी यह अन्तःसंघर्ष वृत्तात्मकता परक भी हो सकता है। इस अन्तःसंघर्ष में जीवन की द्वनद्वात्मकता, उसके सुख–दुःख, प्रकाश–अन्धकार, आशा–निराशा आदि उभय पक्षों का निरूपण एक अनिवार्य उपबंध है।''

लम्बी कविता की लम्बाई में कोई आदि या अन्त नहीं होता। इसका कारण यह है कि, लम्बी कविता वर्तमान को उसकी समग्रता में चित्रित करना चाहती है।

लम्बी कविता सामाजिक यथार्थ और बदलते जीवनानुभवों के नए–नए पहलुओं को खोलती हुई एक विशिष्ट संवेदनात्मक एवं वैचारिक व्यक्तित्व अर्जित करती चलती है। लम्बी कविताएं विशाल रूप में चुनौती देने लगती हैं। यह चुनौती अपने आकार में, अपने ढांचे में, अपनी संरचना में, अपने तेवर में, और सबसे ज्यादा व्यापक और गहरे आशयों को ध्वनित करने वाले अपने कथ्य में, संवेदना और विचार को, स्मृति और इतिहास को तानने की अपनी क्षमता में। परिणाम स्वरूप लम्बी कविताएं एक जरूरी काव्य माध्यम के रूप में हिन्दी साहित्य के मंच पर सामने आयी।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविता 'राम की शक्ति पूजा' महाकाव्यात्मक औदात्य से सम्पन्न लम्बी कविता है। इस कविता में नाटकीयता भी विद्यमान है, जो लम्बी कविता का प्रमुख तत्व है। कवि ने इस कविता के माध्यम से शक्ति की मौलिक कल्पना प्रस्तुत की है। शक्ति की मौलिक कल्पना से यहाँ तात्पर्य है कि शक्ति मूलतः साधना के वशीभूत है, नैतिकता के नहीं।

राम की शक्ति पूजा 1936ई. की रचना है और संश्लिष्ट अर्थ– विधान में एक सूत्र राष्ट्रीय आंदोलन से भी जुड़ता है। कालजयी कविता की यही पहचान होती है कि वह अपने समय के संदर्भो से सीमित नहीं होती बल्कि उन्हें कालमुक्त कर देती है। शक्ति पूजा में राष्ट्रीय चेतना इसी स्तर पर उपस्थित है।

निराला गार्हस्थिक प्रेम के कवि हैं। उनके सम्पूर्ण साहित्य में गार्हस्थिक प्रेम की प्रतिबद्धता के कई उदाहरण मिलते है, जैसे पंचवटी प्रसंग, तुलसीदास तथा सरोज स्मृति के कुछ अंश। शक्ति पूजा की मूल संवेदना इसी कड़ी का अगला चरण है। वे सरोज स्मृति में पुत्री की मुक्ति करते हैं। राम की शक्ति पूजा में पत्नी की मुक्ति उनकी नारीमुक्ति चेतना का सर्वोच्च चरण है।

राम की शक्ति पूजा आख्यानपरक ढाँचे में लिखी गई कविता है, इसीलिए उसके कथ्य का निरूपण जटिल हो गया है। छायावादी कवि की कविता में वैयक्तिकता का होना स्वाभाविक है। छायावाद के चारों कवियों में देखें तो निजता के संप्रेषण की विशेषता निराला में सबसे अधिक दिखाई देती है। उन्होने राम की शक्ति पूजा से तुरंत पहले 'सरोज स्मृति' लिखी थी जिसमें वैयक्तिकता सीधे–सीधे मैं शैली में दिखाई देती है। सरोजस्मृति से तुलना करने पर साफ दिखता है कि राम की शक्ति पूजा में भी उनका अपना व्यक्तित्व प्रक्षेपित हुआ है। सरोज स्मृति में जो समस्याएं है, उन्हीं का अगला चरण राम की शक्तिपूजा में दिखाई देता है। इसीलिए दूधनाथ सिंह जैसे समीक्षकों का मानना है कि निराला का अपना जीवन व उनके आत्मसंघर्ष ही इस कविता में प्रतीकात्मक पद्धति से व्यक्त हुए हैं।

कविता की शुरूआत रवि हुआ 'अस्त' अर्थात् अंधेरे की स्थिति से हुई है। यह अंधेरा एक स्तर पर निराला के जीवन का अंधेरा ही है। यह निराशा वही है जो सरोज स्मृति के अंतिम हिस्से में दिखाई देती है– ''दुःख ही जीवन की कथा रही/ क्या कहूँ जो नहीं कही।''

जीवन के संघर्षो से जर्जर जैसा व्यक्तित्व सरोज स्मृति में निराला का था, वैसा ही राम की शक्ति पूजा में राम का है। संघर्ष से जर्जर राम व निराला एक जैसे हैं–

राम की शक्ति पूजा–

''पश्चात् देखने लगी मुझे, बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ, त्रस्त!''
सरोज स्मृति–
''आते थे मुझ पर तुले तूर्ण।
देखता रहा मैं खडा अपल,
वह शर–क्षेप वह रण कौशल।''

राम की शक्तिपूजा के राम में सीता के प्रति जो गहरा एवं एकनिष्ठ प्रेम दिखाई देता है, वह भी निराला के एकनिष्ठ गार्हस्थिक प्रेम का ही प्रक्षेपण है। मनोहरा देवी के प्रति निराला के प्रेम की एकनिष्ठता का ही परिणाम था कि वे अपनी जन्म कुंडली में लिखे दो विवाहों की घोषणा को भी दृढ संकल्प से खंडित करते है। यही एकनिष्ठता राम में भी है जो सीता की मुक्ति का आधार रही है–

राम की शक्ति पूजा–

''जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका।''
सरोज समृति–
''खंडित करने को भाग्य अंक, देखा भविष्य के प्रति अशंक।
''गाया स्वर्गीया प्रिया संग, भरता प्राणों में राग–रंग।''

राम की शक्ति पूजा की बड़ी समस्या यह है कि अन्याय जिधर है, शक्ति उसी तरफ है। शक्ति का अन्याय के पक्ष में होना निराला के जीवन की समस्या भी है। राम की शक्ति पूजा में रावण समस्त वैभव से सम्पन्न है, जबकि राम वनवास में होने के कारण सुविधाओं से वंचित हैं। साथ ही, महाशक्ति भी अन्यायी रावण के साथ है। निराला के व्यक्तिगत परिवेश में भी शक्ति अन्याय के पक्ष में है। यह अन्याय मुख्यतः आर्थिक क्षेत्र में है और यही निराला के जीवन का मूलभूत संघर्ष है–

राम की शक्ति पूजा–

''अन्याय जिधर है, उधर शक्ति!''
सरोज स्मृति–
''लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर,
हारता रहा मैं स्वार्थ समर''

इन आर्थिक संघर्षो के साथ निराला साहित्यिक जीवन में भी अन्याय के शिकार है। सरोज स्मृति में वे लिखते हैं–

''लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश,
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर,
व्यतीत करता था गुन–गुन कर,
संपादक के गुण, यथाभ्यास
पास की नोंचता हुआ घास।''

सरोज स्मृति में निराला जीवन के संघर्षो से नही जीत पाए थे, इसलिए उनमें पहली बार निराशा व पराजय का स्वर दिखता है। राम की शक्ति पूजा में निराला राम बनकर पुनः विजयी हुए हैं और इस रूप में यह कविता राम की विजय यात्रा के साथ–साथ निराला की भी विजय यात्रा है। इस रूप में 'पुरूषोत्तम नवीन' स्वयं निराला है जो नई शक्ति व नए ओज से युक्त है। निम्नलिखित पंक्तियों में मानो निराला स्वयं को ही प्रेरणा दे रहे हैं –

''आराधन का दृढ आराधन से दो उत्तर,

तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर,
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर रहा त्रस्त,
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त।''

शक्ति पूजा के राम शक्ति की साधना योग प्रक्रिया के माध्यम से कर रहे हैं। चूँकि निराला स्वयं योग मार्ग से जुडे हुए थे, इससे संकेत मिलता है कि उन्होंने अपने ही व्यक्तित्व का आरोपण राम पर किया है–

''क्रम क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
चक्र से चक्र मन चढता गया उर्ध्व निरलस।''

निराला के राम या स्वंय निराला चीत्कार कर उठते हैं –

''धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध!''
(राम की शक्ति पूजा)
''हो इसी कर्म पर वज्रपात
यदि धर्म रहे नत सदा साथ,
इस पथ पर मेरे कार्य सकल
हो भ्रष्ट शीत के से शतदल।'' –(सरोज स्मृति)

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि निराला का मन सरोज स्मृति में थक गया था, किंतु यह थकने वाला मन उनका असली मन नहीं था। निराला अपने राम की ही तरह कभी न हारने वाले पुरूषार्थी थे और यही कारण है कि राम की शक्ति पूजा के राम सीता मुक्ति के अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए कभी न थकने हारने वाली मनः स्थिति में पहुंच जाते हैं–

''वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नही जानता दैन्य, नही जानता विनय।''

शक्ति पूजा के राम निराला को ही अभिव्यक्त करते हैं, इसका एक प्रमाण दूधनाथ सिंह के अनुसार यह भी है कि इस कविता में राम की शारीरिक संरचना व सौन्दर्य वैसा ही बताया गया है जैसा स्वयं निराला का है। निराला शारीरिक दृष्टि से विशालकाय थे। उनकी लम्बी जटाएँ व सम्पूर्ण देह यष्टि ही मानो राम के इस वर्णन में साकार हो उठी हैं–

''दृढ जटा–मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वृक्ष पर, विपुल
उत्तरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशानधकार,
चमकती दूर ताराएं ज्यों हो कहीं पार।''

दूधनाथ सिंह का कहना है कि जिन्होंने निराला को सरोज की मृत्यु के बाद टूटन की स्थिति में देखा है, वे इस कविता को पढ़कर अवश्य महसूस कर सकते हैं कि इसके राम स्वयं निराला ही हैं।

निष्कर्ष :

जिस तरह निराला हमेशा संघर्षों से जूझते रहे, वैसे ही राम भी। अनुष्ठान की पूर्णता के नजदीक देवी दुर्गा का अंतिम फूल उठा के ले जाना ऐसे ही अंतिम संघर्ष का परिचायक है। निराला के जीवन में मनोहरा देवी का साथ छूट जाना, फिर आर्थिक अभावों के कारण सरोज का चले जाना और महान रचनात्मकता के बावजूद साहित्य क्षेत्र में स्वीकृति न मिलना– ये सभी संघर्ष मिलकर निराला को उस भाव–भूमि पर ले जाते हैं जहां कोई भी व्यक्ति आत्मधिक्कार की अवस्था में आ जाता है।

संदर्भ ग्रंथ –

1. नगेन्द्र – राम की शक्तिपूजा : एक कालजयी कृति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1987
2. रामविलास शर्मा – निराला की साहित्य साधना (भाग–1), राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली–110002
3. नन्दकिशोर नवल – राम की शक्तिपूजा : पुनर्विचार, अनुपम प्रकाशन, पटना–800004

4. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' – राम की शक्तिपूजा, आई. एस. बी. एन. 9781–61301–4561

''पं. राजेन्द्र प्रसाद भाुक्ल की निबंध भौलियाँ''

डॉ. द्वारिका प्रसाद चन्द्रवंाी
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
अटल बिहारी वाजपेयी शासकीय
महाविद्यालय पाण्डातराई,
जिला–कबीरधाम (छ.ग.)

पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल एक प्रसिद्ध राजनेता होने के अलावा एक कवि एवं निबंधकार भी रहे हैं। इनकी कृतियों में निबंध संग्रहों की संख्या अधिक हैं। पं. शुक्ल कवि होने के नाते एक चिंतक भी रहे है, इसी कारण उनकी शैली संयत और सुष्ठु रूप से सुसज्जित होकर हमारे सामने उपस्थित होती हैं। पं. शुक्ल जी के विचार एवं चिन्तन अब तक पाँच निबंध संग्रहों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्होने विविध वर्ण्य विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है। लीक से हटकर (1985), मेरी विचार यात्रा (1988), 'धरती की बात (1989)' 'माटी की महक (1985)' एवं संस्कृति का प्रवाह (2002) में प्रकाशित हुए हैं, जिनमें उनके द्वारा निबंधों की विविध शैलियों ने अभिव्यक्ति पाई है।

उद्दोय :– पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल को समाज एक राजनेता के रूप में ज्यादा जानता है, चूँकि वे इसके साथ ही एक अच्छे साहित्यकार भी हैं, जिसे समाज से परिचित कराना व उनके निबंध की विविध शैलियों का विवेचन प्रस्तुत करना इस शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य हैं

मुख्य भाब्द :– माटी, गौरेया, नाद, ब्रह्माण्ड, हनुमानकूद, चिमनी, ढिबरी, हॉरमनी, स्टाइल।

इस शोध आलेख में तथ्यों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनो स्त्रोतों से आधार पर किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत में पं. शुक्ल की कृतियाँ हैं व द्वितीयक स्त्रोत में अन्य विद्वानों की कृतियाँ सम्मिलित हैं।

पं. राजेन्द्र प्रसाद भाुक्ल की निबंध भौलियाँ :– जे.एम.मरे ने उत्तम शैली के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए कहा है – ''लेखक के स्वभाव, विषय और भाषा में पूर्ण सामंजस्य (हारमनी) होना चाहिए।''[1] शैली का अर्थ साहित्य में अंग्रेजी का **'style'** के समानार्थी के रूप में लिया गया है। शैली अभिव्यक्ति का एक विशेष ढंग या तरीका है।

बाबू गुलाब राय के अनुसार – ''शैली अभिव्यक्ति के उस गुण को कहते हैं जिन्हें लेखक या कवि अपने मन के प्रभाव को समान रूप से दूसरों तक पहुँचाने के लिए अपनाता है।''[2]

अंग्रेजी कवि पोप ने शैली को 'विचारों की पोशाक' तथा महर्षि कार्लाइल ने तो इसे विचारों की 'चमड़ी' तक कह डाला है। स्पष्ट है कि शैली सामान्य रूप से किसी कृतिकार के अभिव्यंजना शक्ति का दयोतन करती है।

पं. शुक्ल के निबंधों में शैली के लगभग सभी रूपों का प्रयोग हुआ है, जिनका विवरण सोदाहरण प्रस्तुत है–

1) वर्णनात्मक भौली :– पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल जी ने अपने निबंधों में किसी स्थान वस्तु या व्यक्ति के यथा तथ्य वर्णन वर्णनात्मक शैली में किया है। इसमें उन्होंने अपनी ज्ञानेद्रियों की बहुधा सहायता ली है, जिससे तर्क एवं रोचकता में वृद्धि हुई है तथा पाठकीय रम्यता उद्भूत हुई है। उदाहरण – ''एक बार विनोबाजी दक्षिण गए, जहाँ रामायण का बहुत विरोध हुआ था। लोगों ने उनसे रोश जताया और कहा कि राम की कथा तो दक्षिण पर उत्तर का आक्रमण है। विनोबा ने कहा रामायण को मैं इतिहास के रूप में नहीं लेता, बल्कि उस स्तम्भ के रूप में लेता हूँ जो मानव की मर्यादा को रेखांकित करता है। यदि इतिहास को देखे तो यह संभव ही नहीं है कि किसी के दस सिर हो। भक्ति की भावना से सोचते हैं तो भक्तिरस में भक्ति की तन्मयता है......। [3]

2) चित्रात्मक भौली :– इस शैली में वर्णित विषय का चित्र पाठक के मन–मस्तिष्क पर अंकित होते रहता है, जो उनमें रूचि एवं रम्यता का संचार करता है। पं. शुक्ल ने भी चित्रात्मक शैली का कई स्थलों पर यथोचित प्रयोग किया है। जैसे – '' एक सरोवर के तट पर वृक्ष–हृदय कुमुदवती को मूँदते हुए देखकर रो रहा था। रात्रि में गिरी हुई पाले की बूँदे उसके पत्रों से छनकर धरातल पर गिर रही हैं। ये उसके अश्रुकण है। उस बैठे हुए पक्षियों का कलरव मानो उसके रूदन के शब्द थे।'' [4]

ऐसे ही चित्रात्मकता का एक और दृष्य उसके प्रकृति चित्रण में रस वर्णन में दृष्टव्य है –

''साँस के आकाश में सूर्य की आभा को धारण करने वाला पनियाया बादल लाल गजचर्म सा प्रतीत होता है। अधपके केसर जैसे हरे और भूरे रंग कंदप पुष्प पर मंडराते हुए, नदी के कछार में अभी–अभी फूली कदली का स्वाद चखते हिरण और जंगलों में पहली वर्षा से भीगी धरती की सौंधी सुगंध सूंधते हाथी मेध को रास्ता बनाते चलते हैं। बरसात होने पर कलियों की नोकों मं विकसित केतकी के फूलों से बगीचों में प्रीतिमा छाई है, गौरैया के घोसलों से गाँव–चौबारे भर उठे हैं और पके हुए जामुन के गुच्छों से वन प्रांतर श्यामल हो चले हैं।'' [5]

3) विवेचनात्मक भौली :– इस शैली में मस्तिष्क शक्ति का विशेषतः प्रयोग होता है। पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल जी ने भी अपने निबंधों में अत्यंत सरस विवेचनात्मक शैली का प्रयोग काफी किये है। इस शैली के माध्यम से अपने पाठकों को प्रभावित करने की कला में शुक्ल जी पारंगत लगते हैं। इनकी इस शैली की विशेषता यह है कि उसे इतना सरल व आकर्षक रूप देते हैं कि पाठक का हृदय उसमें सहज ही रम जाता है, विचारों में कहीं भी दुराव या अस्पष्टता का आभास तक नहीं होता है। यथा– ''विद्यानों से क्षमा याचना यह जरूर कहना चाहूँगा कि गीतांजलि कबीरदास के विचारों का भावानुवाद है, जो कि उनको नोबल पुरस्कार भी दिलवा सका। कार्ल मार्क्स तो बहुत बाद पैदा हुए थे। उन्होंने जिन सिद्धान्तों को लिया, जो शोषण मुक्त समाज की उन्होंने बात की, उसका आधार हिंसा को लिया। लेकिन आप चले आइए 600 वर्ष पहले ऐसा लगता है, परत दर परत हमारे जीवन में अंतरंग के जितने रहस्य हैं, जितनी ऊँचाइयाँ हो सकती हैं, अंतरिक्ष से ऊपर भी उन जीवन के रहस्यों को परत दर परत खोलने अगर कोई संत हमारे सामने आकर खड़ा होता है और हमारी चेतना के द्वार पर दस्तक देता है, उसका नाम है कबीर।'' [6]

4) व्याख्यात्मक भौली :– इस शैली में गूढ़ गंभीर विषयों की व्याख्या की जाती है। पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल जी ने भी अपने निबंधों में गूढ़ विषयों की व्याख्या इस व्याख्यात्मक शैली में की है, जैसे – ''भारतीय दर्शन में ईश्वर की प्रथम सृष्टि आकाश है। आकाश का गुण है नाद, और इसी नाद की क्रोड़ में संगीत रूपी शिशु का जन्म हुआ। नाम–अनुनाद नामक दो क्रियाएँ संगीत के प्राण बिंदु हैं। संगीत के रियाज में इसीलिए बीनमंत्र आकार का रियाज मान्य है। ऐसा माना जाता है कि संपूर्ण ब्रह्माण्ड नाद के अधीन है। पंच महातत्वों – पृथ्वी, जल, आकाश, वायु और अग्नि में भी नाद है। सागर भी सात सुरों में बाँधा हुआ है। इसकी लहर–लहर में नया गीत है। प्रकृति से बड़ा कोई कलाकार नहीं है, जितने भी रूप आकार और रंग है, सभी प्रकृति के बनाए और दिये हुए हैं। प्रकृति ही अकेली मौलिक और प्रतिभावान कलाकार है। शेष उसकी सही या गलत नकल या अनुकरण करने वाले है।'' [7]

5) भाशण भौली :– भाषण शैली में उपदेश दिया जाता है, प्रश्न किया जाता है, और साथ ही समाधान भी किया जाता है। इसमें खण्डन–मण्डन भी किया जाता है। चूँकि पं. शुक्ल साहित्यकार के साथ राजनेता भी रहे है, जिनका भाषण से करीब का संबंध है, जिनका पुट उनके निबंधों में भी दृष्टव्य है। यथा – ''इस देश में एक सूरमा माखन लाल चतुर्वेदी जैसा था और क्या हम उसके रास्ते पर चलने की कोशिश कर रहे हैं? यह सोचने और चिंतन करने का वक्त है। सोचें एवं प्रेरणा लें। इसकी आज हमारे देश को बहुत जरूरत है .... हर आदमी खड़ा होकर हमसे पूछता है कि सरकार ने चालीस साल में क्या किया? यह तो आपको – हमको दीख रहा है। ये सड़कें, ये नहरें, ये पुल, ये कारखाने .... सरकार ने चालीस साल में जो भी किया, हमने अपने चालीस साल में क्या किया? क्या स्वतंत्र देश के नागरिक होने का एक भी गुण हमने प्राप्त किया है? देश स्वतंत्र तो हो गया लेकिन स्वतंत्र देश का नागरिक होने के गुण हमने अपने आप में पैदा किये?'' [8]

6) संभाशण भौली :– यह शैली आत्मीयतापूर्ण, निष्छल व अनौपचारिक होती है तथा इसमें व्यावहारिक भाषा शैली की योजना रहती है। इसमें लेखक प्रसन्न भाव से अपने विचारों को व्यक्त करता है, जिससे भाव–प्रवाह में वह शब्दों को भी ढीला कर डालता है। इस शैली में शाब्दिक क्लिष्टता नहीं होती। इसमें शब्द सरल, सरस व प्रवाहपूर्ण होते है। पं. शुक्ल जी के निबंधों के इस शैली के यत्र–तंत्र दर्शन होते ही रहते है। यथा – ''मिस्टर चरेघाट नाम का एक पारसी मजिस्ट्रेट था, जिसकी अदालत में उन्हें पेश किया गया। मजिस्ट्रेट ने पूछा – 'नाम'। आजाद बोले – 'आजाद'। बाप का नाम? आजाद ने जवाब दिया – 'स्वाधीनता'। मजिस्ट्रेट ने पूछा – 'घर'? आजाद ने कहा – 'जेलखाना'। मजिस्ट्रेट बौखला गया और पंद्रह बेतों की सजा सुना दी। बनारस के केन्द्रीय कारागार में आजाद के उघारे बदन पर सड़ासड़ बेतें पड़ रही थीं और बेत के हर आधात के साथ आजाद की निर्भीक आवाज में निकला – ''महात्मा गांधी की जय'' का उद्घोस दीवारों से टकरा रहा था।'' [9]

7) व्यंग्यात्मक भौली :– व्यंग्यात्मक शैली व्यंग्य विनोद एवं कटाक्ष से ओतप्रोत होती है। पं. शुक्ल जी स्वभाव से ही विनोदी रहे हैं, जो उनके निबंधों में भी झलकता है। अव्यवस्था, आंडबर एवं कुरीतियों पर ऐसा कटाक्ष पूर्ण व्यंग्य शुक्ल जी करते हैं कि पाठक वर्ग सोचने को विवश हो जाता है जैसे – ''एक लड़का सड़क पर पेशाब कर रहा था, दूसरे ने देख लिया तो चिल्लाया – क्या कर रहा है रे? चल तेरे बाप को बताता हूं'। उसका भाई देहरी पर बैठकर पेशाब कर रहा था, तब उस आदमी ने कहा – 'चल तेरे बाप को बताता हूं।' उसका बाप तो छत के ऊपर खड़े होकर पेशाब कर रहा था। अभिप्राय यह है कि जब आदमी खुद तो बिगड़ा हुआ है, तो दूसरा क्या समझाएगा? पर्यावरण की शिक्षा देने वाले धुआँधार सिगरेट फूंकेंगे और ऊपर से प्रदूषण का रोना रोएँगे तो यह कहॉ तक उचित है ?'' [10]

आज की शिक्षा पद्धति पर पं. शुक्ल ने ऐसे व्यंग्य किया है – '' आज ही की शिक्षा और जीवन के बीच हनुमान–कूद की स्थिति हो गई है। जब विद्यार्थी पढ़ता है तब तक जीवन से उसका कोई संबंध नहीं रहता और जब जीवन में उतरता है तो शिक्षा से कोई संबंध नहीं रहता। ऐसी है हमारी शिक्षा नीति।'' [11]

8) भावात्मक भौली :– पं. शुक्ल जी विवेचन और वर्णन ही नहीं करते, व्याख्या और संभाषण ही नहीं करते, व्यंग्य एवं कटाक्ष ही नहीं करते, वे व भावों की धारा में बेसुध सा आकन्ठ डूबे बहते ही जाते हैं, जिसका पता हमें उनके निबंधों के भावात्मक शैली की अभिव्यक्ति में चलता है। ग्राम्य कृषक जीवन की कठिनाइयों और तकलीफों से रू–ब–रू. हो चुके पं. शुक्ल जी ग्रामीण कृषक जीवन का चित्रण भाव विह्वल होकर कुछ इस तरह करते है – ''गाँव की झोपड़ियों में बैठा हुआ एक छोटा–सा किसान, जिनके गाँव में आज के जमाने की कोई सुविधाएँ नहीं पहुँची हैं, दिन भर पत्थर फोड़ता है, मिट्टी खोदता है, लंगोटी लगाया हुआ और जब शाम को वापस आता है झोपड़ी में तो चिमनी की ढिबरी के नीचे बैठकर मस्ती में तन्मय होकर रामचरितमानस की चौपाइयाँ गाता है। उससे जो सुख प्राप्त होता है, वह सुख क्या आज कोई दे सकता है ?'' [12]

9) काव्यात्मक भौली :– पं. शुक्ल जी मूलतः कवि है लेखक बाद में, तो उसकी कवि कल्पना का विस्तार तो गद्यो में भी होना स्वाभाविक है। शुक्ल जी यत्र–तत्र अपने निबंधों में काव्यात्मक शैली में भी विवेचन करना प्रारंभ कर देते हैं, जिसमें काव्यों सी कल्पना, अलंकारिकता एवं कोमलकांत पदावली का समावेश दिखाई पड़ता है। शायद उनका कवि हृदय गद्य में भी काव्य–भूमि की तलाश करता फिरता है। उदाहरणार्थ – ''मनुष्य अपनी मनः स्थिति के आधार पर वनस्पति जगत का दर्शन करता है। सुख के क्षणों में वनस्पितियों में भी हर्षोल्लास दिखाई पड़ता है। चंद ज्योत्सना में नहाई हुई निशा, प्रातः काल की अरूणियों में नहाई हुई वसुधा, कोयल की कूजन, फूलों की महक, सुरभित मलय समीर, नाना प्रकार के फूलों से लदे हुए वृक्ष, विविध फूलों से लदी डालियाँ, नव कुसुमित व नव पल्लवित शीतल मंद सुगंध समीर के हिलकोरे से मृदु मंद–मंद हिलती–डुलती वल्लरियाँ मादक अनुराग में अभिवृद्धि कर देती है।'' [13]

10) संस्मरणात्मक या आत्मकथात्मक भौली :– इस शैली में लेखक अपने यात्रा वृत्रान्त या जीवन के कुछ रोचक प्रसंगों का वर्णन कथात्मक या संस्मरणात्मक रूप से करता है। पं. शुक्ल ने अपने निबंधों में भी कई स्थलों पर इस शैली का प्रयोग किया है। बानगी प्रस्तुत है – ''एक बार मैं केरल गया

तो मेरे लिए जो जाइजनिंग ऑफीसर नियुक्त किया गया था, वह एम.ए. पास अच्छा अधिकारी था। वह कोई फर्राटेदार अंग्रेजी नहीं बोलता था। एक पंक्ति अंग्रेजी का बोलता था तो दूसरी पंक्ति में मलयालम पर जाता था। जब मैंने कहा – ''आप अंग्रेजी में बेहतर समझेंगे या मैं हिन्दी में बोलूँ? तो उसने कहा – ''आप तो हिंदी में ही बोलें मैं समझ लूँगा।'' यह पर्याप्त प्रमाण है कि वहाँ भी अंग्रेजी में सक्षम लोग नहीं है ....।'' [14]

निश्कर्श :– उक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि पं. राजेन्द्र प्रसाद शुक्ल जी के निबंधों में निबंध की साहित्य स्वीकृत लगभग सभी शैलियों का प्रयोग हुआ है। उक्त वर्णित शैलियों के अतिरिक्त यत्र–तत्र, ओजस्वी शैली, अभिव्यंजना शैली, प्रतीक शैली, उदाहरण शैली, कथात्मक शैली एवं समास आदि शैली का प्रयोग मिलता है। उनकी शैली आयंत संयत, शालीन और सुष्ठु रूप से सुसज्जित होकर प्रस्तुत हुई है। विचारों का सुगुंफन और कसाव उनका वैशिष्ट्य है। पाठकों के मन को प्रभावित करने, अभिभूत करने और कथ्य को उन तक संप्रेषित करने में शुक्ल की शैली (शैलियाँ) सर्वत्र समर्थ है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. द प्राबलम आफ स्टाइल – जे.एम.मरे
2. सिद्धांत और अध्यपन – बाबू गुलाब राय, आत्माराम संस दिल्ली, 1967
3. संस्कृति का प्रवाह – विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
4. मेरी विचार यात्रा – रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1988
5. धरती की बात – शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989

फुट नोट –

1. द प्राबलम आफ स्टाइल – जे.एम.मरे – पृ. 17 (1922)
2. सिद्धांत और अध्यपन – बाबू गुलाब राय, पृ. 190, आत्माराम संस दिल्ली, 1967
3. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 17, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
4. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 108, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
5. मेरी विचार यात्रा – पृ. 114, रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1988
6. मेरी विचार यात्रा – पृ. 89, रामप्रसाद एण्ड संस, आगरा, 1988
7. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 41, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
8. धरती की बात – पृ. 71, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989
9. धरती की बात – पृ. 84, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989
10. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 216, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
11. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 135, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
12. धरती की बात – पृ. 172, शांति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1989
13. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 109, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002
14. संस्कृति का प्रवाह – पृ. 89, विद्याबिहार नई दिल्ली, 2002

भारतीय ज्ञान परंपरा और हिन्दी कविताओं में राश्ट्रबोध

डॉ. लालचंद सिन्हा
सहायक प्राध्यापक (हिंदी)
शासकीय नवीन महाविद्यालय ठेलकाडीह,
जिला –खैरागढ़–छुईखदान–गंडई (छ.ग.)

की–वर्ड्स : राष्ट्र, राष्ट्रबोध,राष्ट्रीय चेतना, उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध, सामाजिक पुनर्जागरण, युग प्रवर्तक कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र, गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण, अंग्रेजी राज, अन्याय,शोषण,दमन और लूट, समाज सुधार, स्वदेशी आंदोलन, शोषक अन्यायी अंग्रेजी शासन का प्रतिरोध,हिन्दी भाषा प्रेम, सांस्कृतिक उत्थान, ब्रिटिश सरकार, भारत दुर्दशा, क्रांतिकारी भाव, मातृभूमि की वंदना, आजादी, स्वातंत्र्य समर, मुक्ति की आकांक्षा,बलिपंथी ।

'राश्ट्र' क्या है ?

प्राचीन वाङमय में यजुर्वेद में 'राष्ट्र' को इस प्रकार से अभिहित किया है– '' राजसंते चारू शब्दं कुर्वते जनः यस्मिन प्रदेशे विशेष तद् राष्ट्रम ।'' अर्थात् किसी प्रदेश के लोग एक विशिष्ट भाषा द्वारा जहाँ विचार–विनिमय करते हैं, वह स्थान विशेष राष्ट्र है।

स्टालिन के अनुसार – ''राष्ट्र वह समुदाय है जो ऐतिहासिक दृष्टि से विकसित और स्थायी होने के साथ सर्वमान्य भाषा, भू–भाग, आर्थिक जीवन और संस्कृति में परिलक्षित होने वाली विशेष मनोरचना से युक्त हो।''

राष्ट्रबोध के मूल में राष्ट्र और राष्ट्रीयता होती है। वेदों में राष्ट्रीयता की भावना मातृभूमि –स्तवन और देवों के कीर्तिगान में व्यक्त हुआ है। भारतीय मनीषियों के चिंतन में वसुधैव कुटुंबकम् की समष्टि भाव व्यापमान है। अथर्ववेद के मंत्रदाता ने धरती को माता और स्वयं को पुत्र माना है –' माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'। अथर्ववेद के पृथ्वी सुक्त का प्रत्येक श्लोक राष्ट्रभक्ति से युक्त है । **राश्टबोध** ऋग्वेद में इस प्रकार व्यक्त हुआ है –

'' यस्येमें हिमवंतो महित्वा, यस्य समुद्रं रसया सहाहुः।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहु, कस्मे देवाय हविषा विधेम।।''

बशीर अहमद मयूख ने उक्त श्लोक का भावप्रवणता के साथ निम्नवत काव्यानुवाद किया है–
'' जिसके फैले बाहुपाश में,
आवेष्टित होने को दिशा–दिशान्तर।
उद्घोषित हो रहा समुद्रों के सीने में,
जिसके गौरव गीतों का संघोष निरंतर
हिममंडित पर्वत मालाएँ जिसे दे रहीं,
अभिनंदन का मौन समर्पण ।
उस स्वदेश के कर्म–यज्ञ में,
मेरी जीवन समिधा अर्पण।।''

साहित्यकार समाजजन्य परिस्थियों का भोक्ता होता है। वह अपने समाज और जीवन के समस्त ज्ञान और अनुभव का चेतना के स्तर पर साक्षात्कार कर कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस कारण अपनी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए समाजजन्य परिस्थियों का अवलंब ग्रहण करता है। इस प्रकार जहॉ साहित्यकार अपनी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा समाज का बिम्ब प्रस्तुत करता है, वहीं दूसरी ओर अपनी सजग लेखनी के द्वारा समाज का मार्ग प्रशस्त भी करता है। इस प्रकार साहित्य और समाज एक दूसरे के प्रति अन्योन्याश्रित होता है। अतः साहित्य समाज का दर्पण होता है।

सन् 1857 की क्रांति के पश्चात हमारे देश का शासन ब्रिटिश शासन के अधीन हो गया। अंग्रेज व्यापारी से स्वामी बन गए। 1857 की क्रांति में भारतीयों को विफलता हाथ लगी किंतु उन्हें एकता का पाठ अवश्य पढ़ा गया। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी का पूवार्द्ध संसार के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि यह कालावधि अनेक परिवर्तनों को साथ लेकर चल रहा था। यह परिवर्तन साहित्य के क्षेत्र में भी हुआ। एक प्रसिद्ध कहावत है कि जब वीर सिपाही के हृदय में चोट लगती है तो किसी महायुद्ध की विभीषिका खड़ी होती है और साहित्यकार जब मर्माहत होता है तो किसी महान साहित्य का सृजन होता है। बंगाल अंग्रेजो का राजनीतिक केन्द्र था अतः स्वतंत्र्य चेतना का अंकुरण भी यही हुआ। बंकिमचंद्र चटर्जी द्वारा 1882 में रचित आनंदमठ का गीत 'वंदे मातरम्' नवीन स्फूर्ति का प्रतीक बन गया। यह स्वतंत्रता आंदोलन का बीज मंत्र बन गई। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सामाजिक पुनर्जागरण के महती उद्देश्यों से निर्मित ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज, रामकृष्ण मिशन जैसी संस्थाओं ने भारतीय जन मानस में आत्मगौरव की भावना को जीवित रखने में अत्यंत महत्त्पूर्ण योगदान दिया।

सामाजिक पुंनर्जागरण के क्षेत्र में जो स्थान राजाराममोहन राय का है , वहीं स्थान साहित्यिक क्षेत्र में बाबू हरिश्चंद्र का है। उन्होंने अपने समकालीन साहित्यकारों को यह मंत्र दिया कि '' निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। बिनु निज भाषा ज्ञान के , मिटत न हिय को सूल।।'' भारतेंदु मण्डल के साहित्यकारों पर उनका यह मंत्र जादू सा कार्य किया। सन् 1857 के असफल विद्रोह के बाद अंग्रेजों के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण बदल गया। अंग्रेज सुनियोजित दमनचक्र फूट डालो और राज्य करो नीति से केन्द्रीय शक्ति को क्षीण कर दिया । देश पुराने उद्योग– धंधों को नष्ट कर जनता को आर्थिक रूप से पंगु बना दिया। ईसाई धर्म को प्रचार प्रसार कर हिन्दू धर्म और इस्लाम का धर्म का उपहास किया करते थे। और इसी कुत्सित स्वार्थ भाव से उनके द्वारा अंग्रेजी शिक्षा प्रारंभ की गई। हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भारतदुर्दशा, अंधेर नगरी और भारत जननी जैसे नाटकों में गीतो के माध्यम से अंग्रेजों की स्वार्थपूर्ण कुटिल चालों से देशवासियों को सचेत करते हुए गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण दिलाया है –

''रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई,हा–हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई।
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो ,सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो।।''

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी,
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी।। 1

हिन्दी साहित्य में द्वितीय भारतेंदु से विख्यात भारतेंदु मंडल के यशस्वी लेखक एवं कवि **पं.प्रतापनारायण मिश्र** ने भारतेंदु हरिश्चंद्र की विरासत को आगे बढाने का कार्य किया। मिश्रजी की कविताओं राष्ट्रीय चेतना की प्रखरता दिखाई पड़ती है। धनाभाव के बावजूद उन्होंने अंग्रेजी राज के विरूद्ध चेतना का स्फूरण करने तथा अपने देश–भाइयों का दुख सुख ज्यो का त्यों प्रकाश लाने हेतु उन्होंने 'ब्राह्मण' पत्रिका का प्रकाशन किया। अंग्रेजी शासन द्वारा अन्याय,शोषण,दमन और लूट का बेबाकी से पर्दाफाश करते हुए लिखते हैं –

''लैसन,इनकम, चुंगी,चंदा,पुलिस, अदालत वरषा घाम,
सबके हाथन असन वसन जीवन संसयमय रहत मुदाम।
जो इनहूँ से प्रान बचै तो गोली बोलति धाय धड़ाम,
मृत्यु देवता नमस्कार, तुम सब प्रकार बस तृप्यंताम्।।'' 2

भारतेंदु मण्डल के सक्रिय रचनाकारों के रूप में **पं. बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन** का नाम बहुत आदर से लिया जाता है। प्रेमघन की रचनाऍ राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागरण से ओत प्रोत है। अंग्रेजों की अनीति और शोषण से भारत की जनता अन्न धन से हीन दयनीय हो गयी है। सारा उद्योग नष्ट होता जा रहा है। वे लिखते हैं –

''मची है भारत में कैसी होली सब अनीति गति होली, पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज शरम सब घोली।

लगे दुसह अन्याय मचावत निरख प्रजा अति भोली, देश असेस अन्न धन उद्यम सारी संपत्ति ढोली।।'' 3

बालमुकुन्द गुप्त, जगमोहन सिंह, पं. अंबिकादत्त व्यास जैसे अन्य भारतेंदु मण्डल के अन्य कवियों ने राष्ट्रीय चेतना को अपना कवि धर्म माना। किसी देश का आत्मसम्मान परतंत्रता के मोह निद्रा में आखिर कब तक सो सकता है। गतिशील समय के साथ परतंत्रता असह्य हो गई। भारतेंदु युगीन कवियों ने सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना के लिए जो अवदान दिया दिया है उसे विस्मृत नहीं किया जा सकता। इन रचनाकारों ने समाज सुधार, स्वदेशी आंदोलन, शोषक अन्यायी अंग्रेजी शासन का प्रतिरोध,हिन्दी भाषा प्रेम, सांस्कृतिक उत्थान जैसे समसामयिक विषयों पर अपनी लेखनी चलाकर भारत की भोली भाली जनता की सुसुप्त चेतना को जगाने का कार्य किया।

प्रवाहमान समय के साथ हिंदी साहित्य की यात्रा में द्विवेदी युग भारतेंदु युग से एक कदम और आगे बढ़ा। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास में द्विवेदी युग ही वह समय था जब देश के वीर सपूतों ने विदेशी साम्राज्य की दासता की श्रृंखला को विछन्न करने मातृभूमि के चरणों में अपना शीश अर्पण करने बलिदानी मार्ग प्रशस्त हो रहे थे। लोकमान्य तिलक का अमर घोष ' स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' क्रांति का अमर घोष बन गया। गांधी जी के नेतृत्व में आततायी ब्रिटिश साम्राज्य को भस्मीभूत करने क्रांति की आग तीव्रता के साथ भड़क उठी। गांधीजी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन ने यह सिद्ध कर दिया कि स्वाधीनता आंदोलन को जन आंदोलन बन गया है। आजादी की इस क्रांतिकारी आग को शमित करने में ब्रिटिश शासन ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी। इस समय संपूर्ण देश मानो कैदखाना बना हुआ था। रौलेट एक्ट, मार्शल ला, हत्या, लूट और बेगारी उनके अमानुषिक कृत्यों के खूनी हथियार थे।

हिन्दी के प्रथम राष्ट्रवादी कवि **पं. श्रीधर पाठक** थे। उन्होंने राष्ट्रीय चेतना से युक्त काव्य सृजन के माध्यम से भारतीय जन मानस को स्वाधीन भारत का स्वप्न दिखाकर नयी आकांक्षा जगायी। उनकी रचनाएँ स्वदेश भक्ति के साथ स्वतंत्रता और स्वराज की भावना से सराबोर है। ' जय हिन्द ' का कौमी नारा पाठक जी की रचना 'हिन्द वंदना' के माध्यम से लोगों के जुबान पर आया। राष्ट्रीय चेतना की भावना को तीव्र करने के उद्देश्य से पाठकजी ने अनेक राष्ट्रीय गीत भी लिखे। उनके 'भारत गीत' में संकलित सभी कविताएँ राष्ट्रीय चेतना से संपृक्त है । 'भारत गीत की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य है –

''जय जय प्यारा भारत देश।जय जय प्यारा, जग से न्यारा,
शोभित सारा, देश हमारा ,जगत मुकुट जगदीश – दुलारा,
जय सौभाग्य – सुदेश।जय जय प्यारा भारत देश।'' 4

इस युग कवियों ने निःशंक होकर अपनी ओजमयी लेखनी से स्वराज का जयघोष किया और जन–जन में अपने क्रांतिकारी भावों को भर दिया। जिस प्रकार वाल्टेयर और रूसो की लेखनी ने क्रांति को जन्म दिया था, उसी प्रकार इस देश के कवियों ने विवश और लाचार जनता को अपनी तीव्र लेखनी से संबल प्रदान किया। ऐसे समय में ब्रिटिश सरकार मानों प्रतिबंधों का मूर्त रूप बन गई थी और विभिन्न प्रतिबंधों को हथियार के रूप में प्रयोग कर रही थी। वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट लागू कर राष्ट्रीय चेतना परक रचनाओं पर प्रतिबंध लगा दिया और रचनाकारों को कैद कर लिया। **रसिक जी** की ऐसे ही प्रतिबंधित कविता की पंक्तियॉ दृष्टव्य है –

''मातृभूभि को विपज्जाल से मुक्त तुम्हें करना होगा।
स्वतंत्रता की बलि–वेदी पर शीश तुम्हें धरना होगा।।
स्वेच्छाचारी निरंकुशों का गर्व तुम्हें हरना होगा।
याद रहे नूतन जीवन के लिए तुम्हें मरना होगा।।'' 5

नवयुग के विधायक **आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी** ने हिन्दी भाषा और साहित्य को निश्चित दिशा प्रदान किया और खड़ी बोली को व्याकरण के प्रतिमान पर स्थापित किया । उनके द्वारा संपादित सरस्वती प्त्रिका परिनिष्ठित खड़ी बोली के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का संवाहक बनी। देशवासियों का आह्वान करते हुए लिखते हैं कि मनुष्य को भले ही ठीक से भोजन, वस्त्र और आवास

न मिले लेकिन वह स्वतंत्र होना चाहिए। जहॉ परतंत्रता होती है वहॉ स्वर्ग का सुख भी सुखकर नहीं होता है। राष्ट्रीय चेतना से आप्लावित उनकी कविता की पंक्तियां दृष्टव्य है –

''न स्वर्ग भी सुखद, जहॉ परतंत्रता है, चाहे कुटी अति घने बन में बनावे।
चाहे बिना नमक कुत्सित अन्न खावे।।चाहे कभी नर नए पट भी न पावे।
सेवा प्रभो! पर न तू पर की करावे।।'' 6

नाथूराम भार्मा 'ांकर' आततायी अंग्रेजी शासन की अन्याय शोषण लूट और टैक्स की मार से बेहाल भारत के दीन हीन कृषकों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए भगवान भोलेनाथ से उद्धार की याचना कर रहे हैं –

'' शिवशंकर तू यदि शंकर है। फिर क्यों विपरीत भयंकर है?
करतार उदार सुधार इसे, कर प्यार निहार, न मार इसे।।
घनघोर अमंगल राज रहा, भरपूर विरोध विराज रहा।
घर घेर दरिद्र दहाड़ रहा, मुख शोक महासुर फाड़ रहा।।
रिपु रूप कराल कुसंग हुआ, बस भारत का रस भंग हुआ।।'' 7

हिन्दी के प्रबल समर्थक,राष्ट्र पहरी और कुशल राजनीतिज्ञ **पुरूशोत्तम दास टंडन** के लिए राष्ट्र सर्वोपरि है। वे हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सूत्रधार थे। उनका स्पष्ट मत था कि बिना भाषा को मजबूत किए स्वतंत्रता की नींव मजबूत नहीं हो सकती। राष्ट्रीय चेतना के सजग प्रहरी टण्डनजी लिखते हैं –

''हे स्वतंत्रता प्यारी तू क्यों हमको इतना बिसर गई।
भारत छोड़ किधर को भागी हमको इकला छोड़ गई।।
ईश्वर पुत्री जग की प्यारी गुण की आगर कहॉ गई।
हाय हाय कह रोवैं भारतवासी तेरा नाम लई।।'' 8

स्वाधीन आंदोलन के वीर सपूतों में परंतत्रता के पाश को तोड़ फेकने ज्वाला उनके हृदय में धधक रही थी। स्वतंत्रता की उत्कट अभिलाषा और सर्वस्व बलिदान का भाव सहज भाव से उनकी वाणी में अभिव्यक्ति पाने लगी। ओजस्वी कवि **माधव भाुक्ल** का यह उद्‌गार है –

''मेरी जां न रहे, मेरा सर न रहे, सामां न रहे, न ये साज रहे।
फकत हिन्द मेरा आजाद रहे माता के सर पर ताज रहे।।
सिख हिन्दू मुसलमां एक रहें भाई भाई सा रस्मोरिवाज रहे।
गुरू ग्रंथ कुरान पुरान रहे मेरी पूजा रहे औ नमाज रहे।।
माधो की है चाह खुदा की कसम मेरे बाद बफात ये वाज रहे।
गाढ़े का कफन हो मुझ पै पड़ा बन्दे मातरम् अलफाज रहे।।'' 9

दक्षिण अफ्रीका से गांधी जी का भारत लौटना मानो परतंत्रता पाश में बॅधे देशवासियों के लिए मुक्ति का संदेश था। गांधी जी स्वाधीनता आंदोलन को जन जन का आंदोलन बना दिया। सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध अभियान आरंभ किया। गांधी जी के स्वदेश वापसी पर राष्ट्रीय चेतना को मुखरित करने वाले अनेक कवियों ने प्रसन्नता के भाव कुछ इस तरह व्यक्त किए हैं –

''आया मेरा लाल ,रत्न–धन मेरा आया,आया मेरा प्राण, आज मन मेरा आया।
जे स्वधर्म में धी निरंतर ही रहता है, कर्मवीर संसार सकल जिसको कहता है।
विपद काल में जो रहता ध्रुव सा निश्चल है,जिसमें हां भरपूर आज भी आत्मिक बल है।
मेरा प्यारा करमचन्द गांधी सुख पावे, दिन दूनी कर्त्तव्यशीलता वीर दिखावे।।'' 10

गांधी जी को भारत के राजनैतिक आकाश का दिवाकर बताते हुए उनके प्रति ऐसा ही भाव **'निचल'** जी ने भी इन पंक्तियों में व्यक्त किया है–

''गर्वित है आज माता गांधी सा पुत्र पाकर। भारत के राजनैतिक आकाश का दिवाकर।।'' 11

'पै धन बिदेश चली जात यहै अति ख्वारी' कहकर भारतेंदु जी ने जिस चिंता की ओर देशवासियों का ध्यान वर्षों पहले आकृष्ट किया था, उससे त्राण पाने के लिए गांधी जी स्वदेशी आंदोलन को आर्थिक स्वावलंबन का मंत्र बताया। स्वदेशी आंदोलन का प्रमुख अस्त्र बना चरखा। चरखा सुदर्शन चक्र की भांति शत्रु दल पर काल बन कर चलने लगा। कविवर **पं.बंशीधर भाुक्ल** चरखा द्वारा अहिंसात्मक क्रांति करने वाले बलिदानी टोली का वर्णन निम्नानुसार किया है –

''सिर बॉधे कफनवा हो राम, शहीदों की टोली निकली।
गांधी जी का शस्त्र अहिंसा सत्याग्रह संग्राम, चर्खा चक्र सुदर्शन छूटा मचा विश्व कोहराम
ब्रिटिश की ठिठोली निकली। सिर बॉधे कफनवा हो राम, शहीदों की टोली निकली।।'' 12

ऐसा ही भाव **'अख्तर' जी** ने भी व्यक्त किया है –

''बनो तुम कर्मयोगी न तुम कर्म छोड़ो, गुलामी की जंजीर चरखे से तोड़ो।।''
'' जिऍ तो स्वदेशी बदन पर बसन हो,मरें भी अगर तो स्वदेशी कफन हो।''13

प्रखर प्रबुद्ध ओजस्वी क्रांतिकारी नेता लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी का यह उद्घोष '' स्वतंत्रमा मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे मैं लेकर रहूँगा'' देश के लाखों युवाओं के हृदय देश की आजादी के मर मिटने का जोश भर दिया। इसी क्रांतिकारी भाव को हिन्दी के कलमवीरों ने भी अपनी ओजस्वी लेखनी के द्वारा भर रहे थे। अंग्रेजी सत्ता के छल फरेब का पर्दाफास करते हुए 'आजादी या मौत' कविता में स्वामी नारायणानन्द सरस्वती' अख्तर जी लिखते हैं कि गुलामी में जीना न मरने से कम है –

''अबस जिन्दगी का गुमां है, भरम है।गुलामी में जीना न मरने से कम है।।
सितमगर ने हमको जो गफलत में पायातुरत दामे फितरत में अपने फंसाया।
कहा और कुछ और कुछ कर दिखाया। दिखा करके अमृत जहर को पिलाया।।''14

किसी भी राष्ट्र की आत्मा उसकी सभ्यता और संस्कृति बसती है। **मैथिलीशरण गुप्त जी** का संपूर्ण काव्य राष्ट्रीय चेतना की भावना एवं स्वदेशानुराग से ओतप्रोत है।'हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की' कहकर मातृभूमि की आराधना की है। यही उनके लिए ईश्वरीय आराधना बन गई है। गुप्त जी प्रणीत 'भारत भारती' आत्म गौरव का काव्य है। इस महान कृति ने उन्हें र राष्ट कवि के शीर्ष आसन पर बिठा दिया। आत्म गौरव की रक्षा के लिए देश की जनमानस को संदेश देते हुए वे लिखते हैं –

'' हम कौन थे , क्या हो गये हैं और क्या होंगे अभी, आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएं सभी।।
लो अपना भाग शीघ्र ही कर्तव्य के मैदान में , हो बद्ध परिकर हो सहारा देश के उत्थान में।।

भूलो न ऋषि संतान हो,अब भी तुम्हें यदि ध्यान हो,तो विश्व को फिर भी तुम्हारी शक्ति का कुछ ज्ञान हो।।''15

'एक भारतीय आत्मा' से सुप्रसिद्ध श्री माखनलाल चतर्वेदी जी ओजपूर्ण भावों के ओजस्वी कवि एवं प्रखर संपादक थे। प्रभा और प्रताप जैसे प्रतिष्ठि पत्रों के संपादक के रूप में उन्होंने अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध जोरदार प्रचार किया और देश के नौजवानों का आह्वान किया कि वह गुलामी की जंजीरों को तोड़ फेंक दे। वे सच्चे देश प्रेमी आजादी के आंदोलन के सक्रिय आंदोलनकारी थे। हिमकिरीटिनी, हिमतंरगिनी, माता , युगचरण, समर्पण आदि उनकी प्रमुख रचनाऍ हैं जिसने राष्ट्रीय चेतना की प्रखर धारा प्रवाहित हुई है।'' केन्द्रीय कारागार बिलासपुर में बंदी जीवन व्यतीत करते हुए उनकी द्वारा रचित 'पुष्प की अभिलाषा' कविता देश की युवाओं को देश की मुक्ति की लिए बलि पथ पथिक बना दिया–

''मुझे तोड़ लेना वनमाली उस पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जावें वीर अनेक।।'' 16

आततायी ब्रिटिश सरकार की पाशविकता का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं–

''क्या देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियॉ क्यों? यह ब्रिटिश राज का गहना,

कोल्हू का चर्रक चूँ? जीवन की तान,
गिट्टी पर लिखे अंगुलियों ने क्या गान?
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुऑं।।'' 17

स्वराज्य की प्राप्ति के लिए स्वातंत्र्य समर में बढ़चढ़ कर भाग लेने के कारण बहुत से कलमवीरों को बंदी बना लिया गया और उनकी रचनाएँ भी प्रेस एक्त के तहत प्रतिबंधित कर दी गई। मुक्त संगीत के रचनाकार **पं. अभिराम भार्मा** देश के वीर सपूतों का आह्वान करते कहते हैं कि जब तक क्रांति नहीं होगी तब तक ह्रदय को शांति नहीं मिलेगी–

''जब तक होती क्रांति नहीं है, तब तक उर में शांति नहीं है।
क्योंकि जननी की मुझे, अब रखनी है लाज।
लक्ष्च हमारा ध्रुव सा बनकर , कहता है यह आवाहन कर,
अभिराम आओ! आओ! ले लो अपना स्वराज।। '' 18

क्रांति की ज्वाला ज्यों ज्यों तेज होती गई त्यों त्यों आततायी ब्रिटिश सरकार की पाशविकता बढ़ती गई। अन्याय, शोषण, कठोर कारावास और सामूहिक फॉसी और मृत्युदण्ड के कई अमानुषिक तरीकों ने देश के मर्म का आहत कर दिया। चारों ओर पाशविकता के भयंकर दृश्य दिखाई दे रहे थे। क्रांतिकारी कवि **प्रहलाद पाण्डेय '[illegible]'** ने पाशविकता के उन भयंकर दृश्यों को अपनी रचना में इस प्रकार शब्द चित्र खींचा है –

''क्या क्या दिखला दूँ मैं तुमको, देख सको तो मानव! देखो।
अत्याचार दमन जुल्मों के लक्ष लक्ष घावों को देखो।
आज बिवाई फटे हुए उन,कटे हुए पॉवों को देखो।
लोहे के करघों पर लटकी, क्षीण तड़पती लाशें देखो।
खेतों मे मिट्टी से उठती, कंकालों की आहें देखो।।'' 19

गांधी जी के आह्वान पर देश के कई नौजवान आंदोलन के प्रवाह में बह चले। अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध क्रांतिकारी गीत गाते हुए जगह जगह जुलूस निकाले गए। इससे बौखला कर ऐसे गीतों के रचनाकारों को कैद कर कालकोठरी की कठोर यातनाएँ दी गई तथा गीतों को पर प्रतिबंधित कर दिया गया। छैल बिहारी दीक्षित 'कंटक लिखते हैं '' मेर सम्मानित मित्र को आज भी यह शिकायत है कि मेरी एक कविता की बदौलत ही उन्हें एक साल की सजा काटनी पड़ी। उन्हें संतोष होना चाहिए कि इनके लिखने वाले ने उनसे कहीं ज्यादा जेल भोगी है। हिन्दी कवियों में अपनी लिखी कविताओं के लिए ही सजा भोगने वाला शायद मैं ही पहला व्यक्ति हूँ । मुझे इस पर गर्व है। '' **छैल बिहारी दीक्षित 'कंटक':** खून के छींटें : प्रकाशक – सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश पृ.06 ' कण्टक 'जी आजादी की क्रांति के लिए युवाओं का आह्वान करते हुए लिखते हैं–

''बिगुल बज गया सुनो हुशियार! जवानो ,हो जाओ तैयार।
छिड़ा है आजादी का जंग ,उठो फिर लेकर नई उमंग।
चलो मिल कोटि कोटि इक संग, देखकर दुश्मन होवे दंग।
तुमको ताक रहा संसार, जवानों, हो जाओ तैयार।।'' 20

आजादी रक्त मांगती है। क्रांतिकारी रचनाओं से प्रभावित होकर बलिदानियों की होड़ मच गई थी। वहीं ब्रिटिश शासन की चूलें हिलाने के लिए क्रांतिकारियों ने दमन का उत्तर जगह जगह विद्रोह कर तथा सरकारी व्यवस्था को क्षति पहुँचाकर दिया जाने लगा। काकोरी कांड के नायक **रामप्रसाद बिस्मिल** हॅसते हॅसते फांसी के फंदे पर झूल गए। क्रांतिकारी बिस्मिल जी का व्यक्तित्व एक क्रांतिकारी रचनाकार का भी रहा है। अपनी क्रांतिकारी रचनाओं के माध्यम से देश असंख्य युवाओं के दिलों में मातृभूमि की आजादी के लिए प्राणोत्सर्ग का भाव भर दिया। वे मातृभूमि की रक्षा के लिए सैकड़ो बाद जन्म लेकर मातृभूमि के लिए मरने की अभिलाषा करते हैं। उनकी पंक्तियॉ दृष्टव्य है –

''यदि देशहित मरना पड़े, मुझको सहस्त्रों बार भी,
तो भी न मैं इस क्लेश को निज ध्यान में लाउँ कभी।
हे ईश! भारत भूमि में शत बार मेरा जन्म हो,

कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।।'' 21

'पराधीन सपनेहु सुख नाही' अर्थात् पराधीनता की स्थिति में स्वप्न में भी सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। जहॉ एक घड़ी की परवशता भी करोड़ों नरक के समान है, वहीं एक पल भर की स्वतंत्रता सैकड़ों स्वर्गों से भी उत्तम है । अतः जब तक शरीर में जीवन है तब तक देशहित धर्म का त्याग नही करना चाहिए। इन्हीं का संदेश आजादी के दीवानों को देतें हुए **रामनरे�ा त्रिपाठी जी** लिखते हैं–

''एक घड़ी की भी परवशता कोटि नरक के सम है,
पल भर की भी स्वतंत्रता सौ स्वर्गों से उत्तम है।
जब तक जग में मान तुम्हारा , तब तक जीवन धारो,
जब तक जीवन है शरीर में , तब तक धर्म न हारो।। ''22

सन् 1920 से 1936 की कालावधि में हिन्दी साहित्याकाश में छायावाद का सूर्य चमक रहा रहा था। इस कालावधि में संपूर्ण राष्ट्र स्वातंत्र्य संघर्स की कठिनतम घड़ियों से गुजर रहा था। अतः छायावादी कवियों से अक्सर यह शिकायत की गई कि ऐसे कठिन समय में समाज और राष्ट्र से मुंह फेरकर सौंदर्य के कल्पना लोक में विचर रहे हैं। किंतु गहराई से देखने पर यह आरोप निराधार ही सिद्ध होगी। भारत के अतीत गौरव के प्रति अनुराग और वर्तमान दुरवस्था के प्रति क्षोभ के भाव इनकी रचनाओं में समानांतर देखने को मिलती है। इसका सशक्त उदाहरण के रूप में **प्रसाद जी** की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है जिसमें वे देश के वीर नौजवानों को बलिदान के पुण्य पथ पर प्रशस्त होने प्रेरित कर रहे हैं –'' हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती, स्वयं प्रभा समुज्ज्वला, स्वतंत्रता पुकारती।

अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो, प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो।।'' 23

यही भाव **निराला जी** की निम्न पंक्तियों में अवलोकनीय है –

''तुम हो महान, तुम सदा ही महान,
है नश्वर यह दीन भाव ,कायरता, कामपरता,
ब्रह्म हो तुम, पद रज भर भी है नहीं ,
पूरा यह विश्व भार,जागो फिर एक बार।।''24

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जी की इन पंक्तियों में यही भाव दृष्टव्य है –

''छोड़ो निद्रा लो अंगड़ाई, आज श्रृंखलाएँ तोड़ो,
आज मुक्ति की होड़ दौड़ में, आओ तुम भी तो दौड़ो।
तोड़ो इस शोषण की दाढ़े, अब सम्मुख है विकट समर ,
सुनो सुनो ओ सोने वालों , जागृति के भीषण स्वर।।'' 25

इसी प्रकार के क्रांतिकारी बलिदानी भाव को देश युवाओं में हृदय में भरने की प्रार्थना मृत्यंजय महाकाल से **सियाराम�ारण गुप्त जी** कर रहे हैं–

''मृत्युंजय , इस घर में अपना काल कूट भर दे तू आज,
ओ मंगलमय , पूर्ण सदाशिव, रूद्र रूप धर ले तू आज।
चिर निद्रित भी जाग उठे हम, कर दे तू ऐसी हुंकार,
मदमत्तों का मद उतार दे, दुर्धर हो तेरा प्रहार।।'' 26

आततायी ब्रिटिश शासन की शोषण वृत्ति के कारण विश्वभर में सोने की चिडिया कही जाने वाली गीता ज्ञान प्रकाशिनी भारत माता की तीस संतान अत्यंत विपन्न और दयनीय जीवन व्यतीत करने विवश हो गई। ग्रामवासिनी भारत माता नतमस्तक हो तरूतल निवासिनी और अपने घर में प्रवासिनी बनकर रह गई है। शब्द शिल्पी सुमित्रानंदन पंतजी ने भारत माता की शोषणजनित दुरवस्था का हृदय विदारक चित्र अंकित निम्न पंक्तियों में किया है –

''भारत माता ग्रामवासिनी,
तीस कोटि संतान नग्न तन , अर्द्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,

मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नतमस्तक तरूतल निवासिनी।। ''27

कवियत्री सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा रचित 'झांसी की रानी' कविता की पंक्तियों देश अबाल वृद्ध की जुबान बसी हुई थी। 'झांसी की रानी की वीरता का बखान कर देशवासियों को ब्रितानी सरकार को उखाड़ फेकने के लिए उद्वेलित किया। देश की सोई हुई वीरता और पौरूष जाग उठी। भारतवासियों को अपनी गुमी हुई आजादी की कीमत की पहचान करा दी –

''सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी
,बूढे भारत में भी आयी फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आजादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने सबने मन में ठानी थी,
चमक उठी सन सत्तावन में ,वह तलवार पुरानी थी।
बुन्देले हरबोलो के मुंह हमने सुनी कहानी थी।
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी।।'' 28

कवियों की ओजस्वी वाणी से देश में राष्ट्रीय चेतना का ऐसा ज्वार उमड़ आया कि भारतवासियों में बलि पथ पर आगे बढ़कर अपना सर्वस्व समर्पण करने की होड़ सी मच गई। कविवर पं. सोहनलाल द्विवेदी जी की निम्न पंक्तियां दृष्टव्य है –

''वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो।
बंदिनी मां को न भूलो, राग में जब मत्त झूलो,
अर्चना के रत्न कण में एक कण मेरा मिला ला।
जब ह्रदय का तार बोले, शृंखला के बंद खोले,
हों जहां बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो।।''29

निश्कर्शः

राष्ट्रीय जागरण के यज्ञ समिधा में अपनी ओजस्वी वाणी की आहुति डालने में हिन्दी कवियों का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा। प्रस्तुत शोध आलेख में कुछ ही कवियों नाम बानगी के तौर पर आए हैं। ऐसे अनेक कलमवीन हुए जिनकी रचनाएं ब्रितानी सरकार द्वारा बंदी बना ली गई । कलमवीरों को अपने दुर्धर्ष लेखनी के कारण काल कोठरी की कठोर यातनाएं झेलनी पड़ी। निश्चय ही ऐसे कलमवीरों और उनकी रचनाओं का सही मुल्यांकन नहीं हो सका है फलतः वे दोनों गुमनामी के अॅधेरे में खो गए। काव्यालोचकों और इतिहासकारों की सम्यक दृष्टि इन पर नहीं पड़ी । आधुनिक हिन्दी की विकास यात्रा में भारतेंदु युग से राष्ट्रीयता चेतना मूल स्वर के रूप में मुखरित हुआ वह क्रमशः तीव्रतर होता गया। ये कविताएॅ राष्ट्र के मंगल कामना का पवित्र संदेश लेकर आयी और भारतीय जन मानस को मुक्ति आकांक्षा से भर दिया। मुक्ति की आकांक्षा ने ही उन्हें बलिपंथी बनाया। अंततः ये बलिपंथी स्वातंत्र्य के मंदिर में तक पहुंचने में 15 अगस्त1947 को सफल हो सके। निश्चय ही भारत के स्वातंत्र्य समर में हिन्दी कवियों की भूमिका को विस्मृत नहीं किया जा सकता। स्वतंत्र भारतवासी इन कवियों के प्रति सदैव कृतज्ञ रहेगा।

————————————————————0——————————————————

संदर्भ सूची :

1. भारतेन्दु हरिश्चंद्र 1 चर्चित राष्ट्रीय गीत : नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 38–39(भारत दुर्दशा, सन 1880)
2. प्रताप नारायण मिश्रः आजादी के तराने खंड 2 पृष्ठ 21
3. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'चर्चित राष्ट्रीय गीत : नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 40–41(प्रेमघन सर्वस्व,)
4. श्रीधर पाठक :चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 55(भारत गीत,)

5. बलभद्र प्रसाद गुप्त विशारद 'रसिक' :(खून के छींटे) प्रतिबंधित हिंदी साहित्य भाग संपादकः रूस्तम राय2 पृ. 38–39''
6. महावीर प्रसाद द्विवेदीः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 62 सरस्वती सितंबर 1902
7. नाथूराम शर्मा 'शंकर':चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 57(शंकर सर्वस्व सरस्वती, अपैल, 1909)
8. पुरूषोत्तम दास टंडनः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 69
9. माधव शुक्लः अभिलाषाः राष्ट्रीय सिंहनाद,सन 1922 चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 82
10. गया प्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल': त्रिशूल तरंगः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 101
11. निश्चलः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी : भाग एक पृष्ठ 13
12. बंशीधर शुक्लः स्वतंत्रता आंदोलन के गीत : संकलनः देवेश चन्द्र पृ. 22
13. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती' अख्तर':स्वदेशी गानः आजादी के तराने खंड 2 पृष्ठ 312
14. स्वामी नारायणानन्द सरस्वती' अख्तर': आजादी या मौतः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 118
15. मैथिलीशरण गुप्तः भारत भारतीः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 138
16. माखनलाल चतुर्वेदीः एक फूल की चाहः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 151
17. माखनलाल चतुर्वेदीः कैदी और कोकिलाः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 148
18. अभिराम शर्माः मुक्त संगीत': प्रतिबंधित हिंदी साहित्य भाग 2 : संपादकः रूस्तम राय पृ. 89
19. प्रहलाद पाण्डेय 'शशि' प्रतिबंधित हिंदी साहित्य भाग 2 : संपादकः रूस्तम राय पृ. 151
20. छैल बिहारी दीक्षित 'कंटक': आजादी का बिगुलः खून के छींटें : प्रकाशक – सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश पृ.13
21. रामप्रसाद बिस्मिलः सरफरोशी की तमन्नाः भाग 1 पृ. 41
22. रामनरेश त्रिपाठीः पथिक : चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 174
23. जयशंकर प्रसादः स्वतंत्रता पुकारतीः चर्चित राष्ट्रीय गीत :नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 182
24. सूर्यकान्त त्रिपाठी निरालाः जागो फिर एक बारः चर्चित राष्ट्रीय गीत भाग 2: संपादक नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 16
25. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' चर्चित राष्ट्रीय गीत : संपादक नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 244 (केंद्रीय कारागार1943)
26. सियारामशरण गुप्तः शंखनादः चर्चित राष्ट्रीय गीत : संपादक नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 205
27. सुमित्रानंदन पंतः भारत माताः चर्चित राष्ट्रीय गीत : भाग 2:संपादक नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ17
28. सुभद्रा कुमारी चौहानः झांसी की रानीः चर्चित राष्ट्रीय गीत : भाग 2:संपादक नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ87
29. सोहनलाल द्विवेदीः चर्चित राष्ट्रीय गीत : भाग 2:संपादक नरेश चंद्र चतुर्वेदी पृष्ठ 94

FUZZY WEAK INTERIOR IDEALS IN SEMIRINGS

- Dr. Lokesh Jasoria
Associate Professor, Department of mathematics
Government P.G.Girls College Chittorgarh, Rajasthan

1. Introduction

The concept of a semiring was first introduced by Vandiver [13] in 1934. It serves as a generalization not only of rings but also of distributive lattices. Szasz [12] introduced the notion of an interior ideal within the context of semigroups. Quasi-ideals for semirings was introduced by Iseki [2] without zero. The generalization of ideals in algebraic structures has not only been a valuable pursuit for mathematicians but also necessary for further study of algebraic structures. One-sided ideals are generalization of ideals, while quasi-ideals extend this concept as both left ideals and right ideals. Bi-ideals extend the concept of quasi-ideals as a generalization. Rao [9] introduced the concepts of weak interior ideals as generalizations of left, right, two-sided ideals, bi-ideals, quasi-ideals, and interior ideals within the framework of semirings in classical algebra.

Tom Head [1] in the year 1995 established a metatheorem that allows theorems containing references to crisp substructures to be reformulated to refer to fuzzy substructures. This work can be considered as a major development in the area of fuzzy algebraic structures. As a consequence, the results concerning substructures in semigroups, rings and lattices can be derived in concise fashion from corresponding results that concern crisp substructures. Infact, the paper [1] provides a simple conceptual framework for transferring crisp results into fuzzy setting, whenever such transference is possible. Subsequently [3, 10] adopted this metathoerem in fuzzy algebra. Recently Srivastava and Arvind [11] applied this theorem to extend the results of generalized ideals of semirings to fuzzy setting. Alternative proofs of several results are also provided by using metatheorem which doesn't involve calculations.

We begin with both set theoretic and point-wise definition of notions fuzzy left weak interior ideal, fuzzy right weak interior ideal and fuzzy weak interior ideal in a semiring in this paper. Equivalence of these point-wise definitions with the set theoretic definition is established. We here extend the results of these notions in semirings to fuzzy setting by utilizing metatheorem. We further investigate their characterizations within the framework of semirings in the light of Tom Head's metatheorem. We also provide various applications of metatheorem by establishing fuzzy analogs of results pertaining to these notions which doesn't involve calculations. The proofs obtained by metatheorem are simple, shorter and calculation free. Characterizations of these notions in simple semiring and regular semiring are also investigated. The classes of fuzzy left weak interior ideal, fuzzy right weak interior ideal and fuzzy weak interior ideal and various fuzzy ideals in a semiring are shown to be closed under projection. Regularity of semirings is explored through the concepts of fuzzy left, right, and two-sided ideals, fuzzy left weak interior ideal, fuzzy right weak interior ideal and fuzzy weak interior ideal via metatheorem. We also explore these notions within semirings and analyze their properties using metatheorem.

2. Preliminaries

A non-empty set $S(+,\circ)$ is a semiring if it satisfy the properties that $(S,+)$ and $(S,\circ)$ forms semigroups and these operations are linked through the distributive property, specifically $a\circ(b+c)=a\circ b+a\circ c$ for all a,b,c in S. An element a in S is referred to a regular

element, if there exists some b in S such that a = aba. A semiring is termed a regular semiring if every element of S is regular element.

Moreover, a semiring S is called left simple (respectively right simple) if it contains no proper left (respectively right) ideals. A semiring is classified as simple if it possesses no proper two-sided ideals.

Definition 2.1 [5,6,9]. A non-empty subset A of a semiring S is called

(1) a subsemiring of S if A is closed under addition and multiplication.

(2) a left (right) ideal of S if A is a subsemigroup of S under addition and $SA \subseteq A (AS \subset A)$.

(3) an ideal of S if A is a subsemigroup of S under addition and $SA \subseteq A$ and $AS \subset A$.

(4) a bi-ideal of S if A is a subsemiring of S and $ASA \subseteq A$.

(5) an interior-ideal of S if A is a subsemiring of S and $SAS \subseteq A$.

(6) a quasi-ideal of S if A is a subsemigroup of S under addition and $AS \cap SA \subseteq A$.

Example 1. Let Q be the set of all rational numbers. Let

$$S = \left\{ \begin{pmatrix} a & b \\ 0 & c \end{pmatrix} : 0 \neq a,\ 0 \neq c \ \in \mathrm{Q} \right\}$$

be the semiring with respect to usual addition and multiplication. If

$$A = \left\{ \begin{pmatrix} a & 0 \\ 0 & 0 \end{pmatrix} : 0 \neq a \in \mathrm{Q} \right\}$$

Then A is a subsemiring, left ideal and bi-ideal of S.

Example 2. Let Q be the set of all rational numbers. Let

$$S = \left\{ \begin{pmatrix} a & b \\ c & d \end{pmatrix} : \ a,b,c,d \ \in \mathrm{Q} \text{ and } a \neq 0 \right\}$$

be the semiring with respect to usual addition and multiplication. If

$$A = \left\{ \begin{pmatrix} a & b \\ 0 & 0 \end{pmatrix} : 0 \neq a,\ 0 \neq b \in \mathrm{Q} \right\}$$

Then A is a right ideal of S.

Definition 2.2. [5] A non-empty set A of a semiring S is called a

(1) left (right) weak interior ideal of S if A is a subsemiring of S under addition and $SAA \subseteq \mathrm{A}\,(\mathrm{AAS} \subseteq \mathrm{A})$.

(2) Weak interior ideal of S if it is both a left weak interior ideal and a right weak interior ideal of S.

Example 3. Let Q be the set of all rational numbers. Let

$$S = \left\{ \begin{pmatrix} a & 0 \\ 0 & b \end{pmatrix} : 0 \neq a,\ 0 \neq b \ \in \mathrm{Q} \right\}$$

be the semiring with respect to usual addition and multiplication. If

$$A = \left\{ \begin{pmatrix} a & 0 \\ 0 & 0 \end{pmatrix} : 0 \neq a \in \mathrm{Q} \right\}$$

Then A is a subsemiring, left ideal, right ideal, ideal, bi-ideal, interior ideal, left weak interior ideal, right weak interior ideal and weak interior ideal of S.

We recalled the definition of a fuzzy set f of a non-empty set X defined by Zadeh [11] as a mapping $f: X \to [0,1]$. Let S be semiring and F(S) stands for the set of fuzzy subsets of X and C_{ss} denotes the class of all fuzzy subsemirings of S. Throughout this paper *J* will stands for [0,1).

Definition 2.3. [10] A fuzzy set f of a semiring S is called a

(1) *fuzzy subsemiring* of S if f is a fuzzy subsemigroup under addition and multiplication. i.e. $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ and $f(xyz) \geq \min\{f(x), f(y), f(z)\}\ \forall x,y,z \in S.$

(2) *fuzzy left (right) ideal* of S if $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ and $f(xy) \geq f(y)$ ($f(xy) \geq f(x)$) $\forall\ x,y \in S.$

(3) *fuzzy ideal* of S if $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ $f(xy) \geq f(y)$ and $f(xy) \leq f(x)$ $\forall\ x,y \in S.$

(4) *fuzzy bi-ideal* of S if f is a fuzzy subsemiring and $f(xyz) \geq \min\{f(x), f(z)\}$ $\forall x,y,z \in S.$

(5) *fuzzy interior ideal* of S if f is a fuzzy subsemiring and $f(xyz) \geq f(y)\ \forall x,y,z \in S.$

Example 4. Let $S = M_2(N_0) = 2 \times 2$ matrices over the non-negative integers. The operations are matrix addition and multiplication. Let

$$A = \begin{bmatrix} 1 & 0 \\ 0 & 1 \end{bmatrix}, B = \begin{bmatrix} 2 & 1 \\ 1 & 2 \end{bmatrix} \text{ and } C = \begin{bmatrix} 1 & 0 \\ 0 & 2 \end{bmatrix} \in M_2(N_0)$$

Define: $f: M_2(N_0) \to [0,1]$ such that $f(M) = \dfrac{Trace(M)}{1 + Trace(M)}$. Then

$f(A) = 2/3,\ f(B) = 4/5$ and $f(C) = 3/4$ $ABC = \begin{pmatrix} 2 & 2 \\ 1 & 4 \end{pmatrix}$. Therefore, $f(ABC) = 6/7$

Fuzzy Subsemiring: $f(A+B) = 6/7$, $f(AB) = 4/5$ and $\min\{f(A), f(B)\} = 2/3$. Therefore $f(A+B) \geq \min\{f(A), f(B)\}$ and $f(AB) \geq \min\{f(A), f(B)\}$.

Fuzzy Left (right, lateral)ideal: $f(ABC) = 6/7$. Clearly $f(AB) \geq f(B)$ and $f(AB) \geq f(A)$.

Fuzzy Bi-Ideal: $\min\{f(A), f(C)\} = 2/3$. Therefore $f(ABC) \geq \min\{f(A), f(C)\}$.

Fuzzy Interior Ideal: Clearly $f(ABC) \geq f(B)$.

Definition 2.4. [7] A fuzzy set f of a semiring S is called a *fuzzy quasi-ideal* of S if $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ and $\min\{\sup_{z=xy}(f(x), \sup_{z=xy} f(y)\} \leq f(z)\ \forall \mathrm{z} \in \mathrm{S}.$

Example 5. Let $S = M_2(N_0) = 2 \times 2$ matrices over the non-negative integers. The operations are matrix addition and multiplication. Let

$$A = \begin{bmatrix} 2 & 1 \\ 0 & 1 \end{bmatrix} \text{ and } B = \begin{bmatrix} 1 & 0 \\ 1 & 1 \end{bmatrix} \in M_2(N_0)$$

Define: $f : M_2(N_0) \to [0,1]$ such that $f(M) = \dfrac{Sum\ of\ elements\ of\ matrx}{k}$, where k is chosen so that $f(M) \in [0,1]$. Then $f(A) = 4/8$, $f(B) = 3/8$ and $f(AB) = 6/8$. It can be seen easily that

$f(z) \geq \min\{ \sup_{z=AB} (f(x), \sup_{z=AB} f(y)\}$. Hence f is a fuzzy quasi-ideals.

Definition 2.5. [6] A fuzzy set f of a semiring S is called a

(1) *fuzzy left (right) weak interior ideal* of S if f is a fuzzy subsemiring and $S \circ f \circ f \subseteq f$ $(f \circ f \circ S \subseteq f)$.

(2) *fuzzy weak interior ideal* of S if f is a fuzzy subsemiring, $S \circ f \circ f \subseteq f$ and $(f \circ f \circ S \subseteq f)$.

Now we briefly study 'metatheorem' formulated by Tom Head [1] in the year 1995. Let S be a semiring and P(S) and C(S) denotes the set of all subsets and characteristic subsets of S. The mapping $Chi : P(S) \to C(S)$ defined by $Chi(A) = \chi_A$ is a bijection. P(S)(C(S)) stands for the set of all subsets (crisp sets) of S. It is clear that $P(S) \cong C(S)$ under the isomorphism *Chi* and *Chi* commutes with the finite intersection and product of sets in a semiring S.

Definition 2.6 [1] Let S be a semiring, $f \in F(S)$ and $r \in J = [0, 1)$. Then the function Rep : $F(S) \to C(S)^J$ is defined by : $\text{Rep}(f)(r)(x) = \begin{cases} 1 & \text{if } f(x) > r \\ 0 & \text{if } f(x) \leq r \end{cases}$

Proposition 2.7 [1] The function Rep is injective and Rep $\left(\bigcap_{i=1}^{k} f_i \right) = \bigcap_{i=1}^{k} \text{Rep}(f_i)$ and $\left(\bigcup_{i \in M} f_i \right) = \bigcup_{i \in M} \text{Rep}(f_i)$, where $f_i \in F(S)$ and M is an index set.

Proposition 2.8. [1] Rep is an order isomorphism of $F(S)$ onto $I(S)$, where $I(S)$ denotes the image of the Rep function.

Define the binary operations **+**, $\circ$: $F(S)\ X\ F(S) \to F(S)$ as follows: for $f_1, f_2 \in F(S)$,

$$(f_1 + f_2)(x) = \begin{cases} \sup_{x=x_1+x_2} [\min\{f_1(x_1),\ f_2(x_2)\}] & \\ 0 & \textit{if } x \text{ not expressed as } x = x_1 + x_2 \end{cases}$$

and

$$(f_1 \circ f_2)(x) = \begin{cases} \sup_{x=x_1 \circ x_2} [\min\{f_1(x_1),\ f_2(x_2)\}] & \\ 0 & \textit{if } x \text{ not expressed as } x = x_1 \circ x_2 \end{cases}$$

The above binary operations '+' and 'o' on F(S) were called by Tom Head [1], the convolutional extension of the binary operations '+' and 'o' to F(S). Interestingly the convolutional extensions '+' and 'o' on F(S) coincides with the sum and product of fuzzy sets introduced by Liu [4] in a groupoid or in any other algebraic system.

Proposition 2.9. [1] For $f_1, f_2 \in F(S)$,

$$\text{Rep}(f_1 + f_2) = \text{Rep}(f_1) + \text{Rep}(f_2) \text{ and } \text{Rep}(f_1 \circ f_2) = \text{Rep}(f_1) \circ \text{Rep}(f_2).$$

Definition 2.10. [1] Consider $\mathcal{D}$ as a collection of fuzzy sets within a semiring S. We defined $\mathcal{D}$ as being projection closed if every $\gamma \in \mathcal{D}$ and for any $r \in J$, the Rep(γ)(r) remains an element of $\mathcal{D}$.

Proposition 2.11. [1] $D_1, D_2 (\mathcal{D}_1, \mathcal{D}_2)$ be the classes of crisp (fuzzy) subsets of a semiring S. Then $\mathcal{D}_1 \subseteq \mathcal{D}_2 (\mathcal{D}_1 = \mathcal{D}_2) \Leftrightarrow D_1 \subseteq D_2 (D_1 = D_2)$.

Metatheorem 2.12. [1] $(S, +, \circ)$ be a Semiring . Consider the algebra- $(F(S), \inf, \sup, +, \circ)$. Let $L(a_1, a_2, ..., a_m)$ and $M(a_1, a_2, ..., a_m)$ be two expression defined over the variables set $\{a_1, a_2, ..., a_m\}$ and operations set $\{\inf, \sup, +, \circ\}$ on $P(S)$. Let $\mathcal{D}_1, \mathcal{D}_2, ..., \mathcal{D}_m$ are projection closed classes of fuzzy sets of S and D_1, D_2, ..., D_m be their crisps classes respectively. Then

$$L(\gamma_1, \gamma_2, ..., \gamma_m) \text{ REL } M(\gamma_1, \gamma_2, ..., \gamma_m)$$

holds $\forall \gamma_1 \text{ in } \mathcal{D}_1, ..., \gamma_m \text{ in } \mathcal{D}_m \Leftrightarrow$ it holds $\forall \gamma_1 \text{ in } D_1, ..., \gamma_m \text{ in } D_m$ where REL represent one of the three symbols $\le$, $=$ or $\ge$.

3. Fuzzy weak interior ideals in Semirings

In this section, we begin by presenting the point-wise definitions of fuzzy left (right) weak interior ideals within a semiring and demonstrate that these definitions are equivalent to those provided in [9].

Definition 3.1. Let $f \in F(S)$. Then f is called a *fuzzy left weak interior ideal* if f is a fuzzy subsemigroup under addition and $f(xyz) \ge \min\{f(y), f(z)\} \ \forall x, y, z \in S.$

Definition 3.2. Let $f \in F(S)$. Then f is called a *fuzzy right weak interior ideal* if f is a fuzzy subsemigroup under addition and $f(xyz) \ge \min\{f(x), f(y)\} \ \forall x, y, z \in S.$

Definition 3.3. Let $f \in F(S)$. Then f is called a *weak interior ideal* if f is a fuzzy subsemigroup under addition, $f(xyz) \ge \min\{f(y), f(z)\} \ \forall x, y, z \in S$ and $f(xyz) \ge \min\{f(x), f(y)\}$ $\forall x, y, z \in S.$

Example 6. In the Example 4. It can be seen clearly that $f(ABC) = 6/7$, $\min\{f(B), f(C)\} = 2/3$ and $\min\{f(A), f(B)\} = 3/4$. Therefore $f(ABC) \ge \min\{f(B), f(C)\}$ and $f(ABC) \ge \min\{f(A), f(B)\}$. Hence f is a fuzzy weak interior ideal of S.

Now we provide the equivalence between the Definitions 2.5 and 3.1 of fuzzy left weak interior ideals in semirings.

Theorem 3.4. Let $f \in F(S)$. Then $f \in C_{wil}$ if and only if $S \circ f \circ f \subseteq f$

Proof: Let $z \in S$. Then, $S \circ f \circ f \subseteq f$

$\Leftrightarrow \quad (S \circ f \circ f)(z) \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad \sup_{z=uvx} [\min\{(S \circ f)(uv), \ f(y)\}] \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad \sup_{z=uvx} \min[\min\{S(u), f(v)\}, f(x)] \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad \sup_{z=uvx} [\min(f(v), f(x))] \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad f(uvx) \ge \{\min[f(v), f(x)]\} \ \forall u, v, x \in S$

$\Leftrightarrow \quad f \in \mathcal{C}_{wil}$.

Next we provided equivalence between the Definitions 2.5 and 3.2 of fuzzy right weak interior ideals in semirings.

Theorem 3.5. Let $f \in F(S)$. Then $f \in \mathcal{C}_{wir}$ if and only if $f \circ f \circ S \subseteq f$.

Proof: Let $z \in S$. Then, $f \circ f \circ S \subseteq f$

$\Leftrightarrow \quad (f \circ f \circ S)(z) \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad \sup_{z=uvx} [\min\{(f \circ f)(uv),\ S(x)\}] \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad \sup_{z=uvx} \min[\min\{f(u),\ f(v)\}, S(x)] \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad \sup_{z=uvx} [\min\{f(u),\ f(v)\}] \le f(z)$

$\Leftrightarrow \quad f(uvx) \ge \{\min[f(u), f(v)]\}\ \forall u, v, x \in S$

$\Leftrightarrow \quad f \in \mathcal{C}_{wir}$.

Finally equivalence between the Definitions 2.5 and 3.3 of fuzzy weak interior ideals in semirings can be demonstrated in similar manner.

Theorem 3.6. If $f \in F(S)$. Then $f \in \mathcal{C}_{wi} \Leftrightarrow S \circ f \circ f \subseteq f$ and $f \circ f \circ S \subseteq \gamma$.

4. Level and strong level subsets of a fuzzy set in Semirings

Definition 4.1. Let f be a fuzzy set defined on a non-empty set X and r $\in$[0,1). Then the level subset, f_r and strong level subset, $f_r^{>}$ of f are defined as

$$f_r = \{x \in X : f(x) \ge r\} \quad \text{and} \quad f_r^{>} = \{x \in X : f(x) > r\}.$$

Theorem 4.2. Let *f* and *g* be two fuzzy sets in a semiring S. The, $(fog)_t^{>} = f_t^{>}\ g_t^{>}$ $\forall\ t \in [0,1)$.

Theorem 4.3. The non-empty intersection of any family of fuzzy left weak interior ideals of a semiring S is a fuzzy left weak interior ideal of S.

Proof. Let $\{f_i\}_{i\in\partial}$ be a family of fuzzy left weak interior ideals of S and let $f = \bigcap_{i\in\partial} f_i$.

Where δ is an index set. Since the non-empty intersection of an arbitrary family of subsemiring is a subsemiring of S, f is a fuzzy subsemiring of S. Now for $x, y, z \in$ S,

$$f(xyz) = \bigcap_{i\in\delta} f_i(xyz)$$

$$= \inf_{i\in\delta} f_i(xyz)$$

$$\ge \inf_{i\in\delta} \{\min\{f_i(y),\ f_i(z)\}\}$$

$$= \min\{\inf_{i\in\partial} f_i(y),\ \inf_{i\in\partial} f_i(z)\}$$

$$= \min\{\bigcap_{i\in\delta} f_i(y),\ \bigcap_{i\in\delta} f_i(z)\}$$

Thus f is a fuzzy left weak interior deal of S.

Theorem 4.4. The following conditions are equivalent in a semiring S:

(1) f is a fuzzy left weak interior ideal of S.

(2) Each non–empty level subset f_t is a left weak interior of S.

(3) Each non–empty strong level subset $f_t^{>}$ of f is a left weak interior ideal of S.

Proof. (1) ⇒(3). Let f is a fuzzy left weak interior of S. Let $f_t^{>}$ is non-empty. We show that $f_t^{>}$ is a left weak interior of S. To show $S f_t^{>} f_t^{>} \subseteq f_t^{>}$. If possible, let $f_t^{>}$ is not a left weak interior of S. Therefore, $S f_t^{>} f_t^{>} \not\subseteq f_t^{>}$. This implies that there exist x $\in S f_t^{>} f_t^{>}$ but z $\notin f_t^{>}$.Then x = s x_1 x_2 for some x_1, $x_2 \in f_t^{>}$ and s $\in$S. Since x_1, x_2 $\in f_t^{>}$, f (x_1) > t < f (x_2). Thus, f (s x_1 x_2) $\geq$ min { f (x_1), f (x_2) } > t . Hence x= s x_1 $x_2 \in f_t^{>}$,which is a contradiction.

(3) ⇒ (2). Let f_t is a non–empty level subset of f. Then, $f_t = \bigcap_{r<t} f_t^{>}$. Since f_t is non empty, $f_t^{>}$ is non–empty for each r < t. By (3) $f_t^{>}$ is a left weak interior ideal of S. Again, since the intersection of an arbitrary family of left weak interior ideal of S is a left weak interior ideal of S, f_t is a left weak interior ideal.

(2) ⇒ (1). Suppose f is not a fuzzy left weak interior ideal of S. Therefore for some x,y,z $\in$ S, f (xyz)< min{ f (y), f (z)}. This implies f (xyz)< f (y) and f (xyz) < f (z). This implies f (a)< min{ f (y), f (z)}, where a=xyz. Chose a real number t such that f (a) < t < min{ f (y), f (z)}. Then a $\notin f_t^{>}$ and y, z$\in f_t^{>}$. Therefore a= x yz$\in$ S $f_t^{>} f_t^{>}$, but a $\notin f_t^{>}$. Hence, S $f_t^{>} f_t^{>} \not\subseteq f_t^{>}$ which contradict (2) .

Similarly we can prove:

Theorem 4.5. The following conditions are equivalent in a semiring S:

(1) f is a fuzzy right weak interior ideal of S.

(2) Each non–empty level subset f_t is a right weak interior of S.

(3) Each non–empty strong level subset $f_t^{>}$ of f is a right weak interior ideal of S.

Theorem 4.6. The following conditions are equivalent in a semiring S:

(1) f is a fuzzy weak interior ideal of S.

(2) Each non–empty level subset f_t is a weak interior of S.

(3) Each non–empty strong level subset $f_t^{>}$ of f is a weak interior ideal of S.

5. Projection Closed fuzzy classes in Semirings

Metatheorem serves as a crucial tool that allows theorems containing references to crisp substructures to be reformulated to refer to fuzzy substructures. The main tool used for establishing the metatheorem is the concept of representation function Rep: $P(X) \to C(X)^J$, J being the interval [0, 1).

Theorem 5.1. The class C_{SS} of all fuzzy subsemirings of a semiring S is projection closed.

Proof. Consider $f \in C_{SS}$. Therefore $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ and $f(xy) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ $\forall x, y \in S$. To show that $\text{Rep}(f)(r) \in C_{SS}$ $\forall r \in J$. Equivalently, $\text{Rep}(f)(r)(x+y) \geq$

$\min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(y)\}$ and $\mathrm{Rep}(f)(r)(xy) \geq \min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(y)\}$ $\forall\, x, y \in S$. Let $x, y \in S$ and $r \in J$. Suppose $\min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(y) = 1$. Therefore, $\mathrm{Rep}(f)(r)(x) = 1 = \mathrm{Rep}(f)(r)(y)$. Then $f(x) > r < f(y)$. Thus $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\} > r$, $f(xy) \geq \min\{f(x), f(y)\} > r$ and hence $\mathrm{Rep}(f)(r)(x+y) = 1 = \mathrm{Rep}(f)(r)(xy)$. If $\min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(y)\} = 0$, then the inequality holds trivially.

Theorem 5.2. The class C_l of all fuzzy left ideals of a semiring S is projection closed.

Proof. Consider $f \in C_l$. Therefore $f \in C_{ss}$ and $f(xy) \geq f(y)\ \forall\, x, y \in S$. To show that $\mathrm{Rep}(f)(r) \in C_l\ \ \forall\, r \in J$. Equivalently, $\mathrm{Rep}(f)(r)(xy) \geq \mathrm{Rep}(f)(r)(y)\ \ \forall\, x, y \in S$ and $\forall\, r \in J$. Let $x, y \in S$ and $r \in J$. Suppose $\mathrm{Rep}(f)(r)(y) = 1$. Then $\mu(x) > r$. Thus $f(xy) \geq f(y) > r$ and hence $\mathrm{Rep}(f)(r)(xy) = 1$. If $\mathrm{Rep}(f)(r)(y) = 0$, then the inequality holds trivially.

Similarly we can prove:

Theorem 5.3. The classes C_r and C_i of all fuzzy right and two sided ideals of a semiring S are projection closed.

Theorem 5.4. The class C_b of all fuzzy bi-ideals of a semiring S is projection closed.

Proof. Consider $f \in C_b$. Therefore $f \in C_{ss}$ and $f(xyz) \geq \min\{f(x), f(z)\}\ \ \forall x, y, z \in S$. To show that $\mathrm{Rep}(f)(r) \in C_b\ \ \forall\, r \in J$. In view of Theorem 5.1, we are required to show that, $\mathrm{Rep}(f)(r)(xyz) \geq \min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(z)\}$. Let $x, y, z \in S$ and $r \in J$. Suppose $\min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(z) = 1$. Therefore, $\mathrm{Rep}(f)(r)(x) = 1 = \mathrm{Rep}(f)(r)(z)$. Then $f(x) > r < f(z)$. Thus $f(xyz) \geq \min\{f(x), f(z)\} > r$ and hence $\mathrm{Rep}(f)(r)(xyz) = 1$. If $\min\{\mathrm{Rep}(f)(r)(x), \mathrm{Rep}(f)(r)(z)\} = 0$, then the inequality holds trivially.

Theorem 5.5. The class C_{in} of all fuzzy interior ideals of a semiring S is projection closed.

Proof. Consider $f \in C_{in}$. Therefore $f \in C_{ss}$ and $f(xyz) \geq f(y)\ \ \forall x, y, z \in S$. To show that $\mathrm{Rep}(f)(r) \in C_{in}\ \ \forall\, r \in J$. In view of Theorem 5.1, we are required to show that $\mathrm{Rep}(f)(r)(xyz) \geq \mathrm{Rep}(f)(r)(y)$. Let $x, y, z \in S$ and $r \in J$. Suppose $\mathrm{Rep}(f)(r)(y) = 1$. Then $f(y) > r$. Thus $f(xyz) \geq f(y) > r$ and hence $\mathrm{Rep}(f)(r)(xyz) = 1$. If $\mathrm{Rep}(f)(r)(y) = 0$, then the inequality holds trivially.

Theorem 5.6. The class C_q of all fuzzy quasi-ideals of a semiring S is projection closed.

Proof. Let $f \in C_q$. Then $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ and $f(z) \geq \min\{\sup_{z=xy} f(x), \sup_{z=xy} f(y)\}\ \forall\, z \in S$. In view of Theorem 3.1, it is sufficient to show that that $\mathrm{Rep}(f)(r)(z) \geq \min\{\sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(x), \sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(y)\}\ \forall\, z \in S$ and $r \in J$. Let $z \in S$ and $r \in J$ such that $\min\{\sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(x), \sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(y)\} = 1$. Then, $\sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(x) = \sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(y) = 1$.

Now $\sup_{z=xy} \mathrm{Rep}(f)(r)(x) = 1$ implies that there exist x_1, y_1 in S satisfying $z = x_1 y_1$ in S

such that Rep(f)(r)(x_1)=1. Thus $f(x_1) > r$. Therefore, $\sup_{z=xy} f(x) > r$. Similarly we can show $\sup_{z=xy}$ Rep(f)(r)(y)=1 implies $\sup_{z=xy} f(y) > r$. Therefore,
$f(z) \geq \min\{\sup_{z=xy} f(x), \sup_{z=xy} f(y)\} > r$. Thus Rep($f$)(r)(z)=1. The result follows trivially if $\min\{\sup_{z=xy} \text{Rep}(f)(r)(x), \sup_{z=xy} \text{Rep}(f)(r)(y)\}=0$. Hence $\text{Rep}(f)(r)(z) \geq \min\{\sup_{z=xy} \text{Rep}(f)(r)(x), \sup_{z=xy} \text{Rep}(f)(r)(y)\}, \forall z \in S, r \in J$.

Therefore $\text{Rep}(f)(r) \in C_q$

Theorem 5.7. C_{wil}, the class of all fuzzy left weak interior ideals of a semiring S is projection closed.

Proof. Consider $f \in C_{wil}$. Therefore $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ &
$f(xyz) \geq \min\{f(y), f(z)\}\ \forall x, y, z \in S$. To show C_{wil} is closed under projection, we establish $\text{Rep}(f)(r) \in C_{wil}\ \forall r \in J$. i.e. $\text{Rep}(f)(x+y) \geq \min\{\text{Rep}(f)(x), \text{Rep}(f)(y)\}$,
$\text{Rep}(f)(r)(xyz) \geq \min\{\text{Rep}(f)(r)(y), \text{Rep}(f)(r)(z)\}\ \forall x, y, z \in S\ r \in J$.
$\text{Rep}(f)(r)(x+y) \geq \min\{\text{Rep}(f)(r)(x), \text{Rep}(f)(r)(y)\}\ \forall x, y \in S$ and $r \in J$ as C_{ss} is projection closed Let $x, y, z \in S$ and $r \in J$. Suppose $\min\{\text{Rep}(f)(r)(y), \text{Rep}(f)(r)(z)\}=1$. Therefore, $\text{Rep}(f)(r)(y) = \min\{\text{Rep}(f)(r)(y), \text{Rep}(f)(r)(z)\}=1$. This implies that $f(y) > r < f(z)$. Thus $\gamma(xyz) \geq \min\{f(y), f(z)\} > r$ and hence $\text{Rep}(f)(r)(xyz) = 1$. If $\min\{\text{Rep}(f)(r)(y), \text{Rep}(f)(r)(z)\} = 0$, then the inequality holds trivially.

Theorem 5.8. C_{wir}, the class of all fuzzy right weak interior ideals of a semiring S is projection closed.

Proof. Let $f \in C_{wir}$. Therefore $f(x+y) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ and $f(xyz) \geq \min\{f(x), f(y)\}$ $\forall x, y, z \in S$. To show C_{wir} is closed under projection, we establish $\text{Rep}(f)(r) \in C_{wil}\ \forall r \in J$. i.e. $\text{Rep}(f)(x+y) \geq \min\{\text{Rep}(f)(x), \text{Rep}(f)(y)\}$, $\text{Rep}(f)(r)(xyz) \geq \min\{\text{Rep}(f)(r)(x), \text{Rep}(f)(r)(y)\}\ \forall x, y, z \in S$ and $r \in J$. $\text{Rep}(f)(x+y) \geq \min\{\text{Rep}(f)(x), \text{Rep}(f)(y)\}$ $\forall x, y \in S$ and $r \in J$ as C_{ss} is projection closed. Let $x, y, z \in S$ and $r \in J$. Suppose $\min\{\text{Rep}(f)(r)(x), \text{Rep}(f)(r)(y)\}=1$. Therefore, $\text{Rep}(f)(r)(x) = 1$ and $\text{Rep}(f)(r)(y) = 1$. This implies that $f(x) > r, f(y) > r$. Thus $f(xyz) \geq \min\{f(x), f(y)\} > \text{r}$ and $\text{Rep}(f)(r)(xyz) = 1$. If $\min\{\text{Rep}(f)(r)(x), \text{Rep}(f)(r)(y)\} = 0$, then the inequality holds trivially.

Theorem 5.9. C_{wi}, the class of all fuzzy weak interior ideals of a semiring S is projection closed.

6. Metatheorem and Fuzzy weak interior ideals in Semirings

Theorem 6.1. Let S be a semiring. Then,
(1) Every fuzzy interior ideal of S is a fuzzy left (right) weak interior ideal of S.
(2) Every fuzzy interior ideal of S is a fuzzy weak-interior ideal of S.
(3) Every fuzzy left weak-interior ideal of a left simple semiring S is a fuzzy left ideal of S.
(4) Every fuzzy right weak-interior ideal of a right simple semiring S is a fuzzy right ideal of S.

(5) Every fuzzy weak-interior ideal of a left and right simple semiring S is a fuzzy two sided ideal of S.

Proof. We establish (3). That is every fuzzy left weak-interior ideal of a left simple semiring S is a fuzzy left ideal of S. By Theorem 5.7 and 5.2, both the classes $\mathcal{C}_{wil}$ and $\mathcal{C}_l$ of fuzzy left weak-interior ideals and fuzzy left ideals are closed under projection. Therefore, by Proposition 2.11, $\mathcal{C}_{wil} \subseteq \mathcal{C}_l$ if and only if $C_{wil} \subseteq C_l$, where C_{wil} and C_l denotes the classes of all crisp left weak-interior and crisp left ideals of S respectively. By Theorem 4.2 of [9], every left weak-interior ideal of a left simple semiring S is a left ideal of S and *Chi* is an isomorphism from P(S) to C(S), therefore, $C_{wil} \subseteq C_l$. Hence $\mathcal{C}_{wil} \subseteq \mathcal{C}_l$.

The other results are extensions of Theorem 3.1 and Corollary 3.1, 3.2, 4.3, 4.5 of [9] to fuzzy setting and can be proved similarly.

Theorem 6.2. Let h be a fuzzy subsemiring of a semiring S. Then, h is a fuzzy left weak interior ideal of S if and only if there exists a fuzzy left ideal of f of S such that $f \circ h \subseteq h \subseteq f$.

Proof. Define C={$\chi_K \in C(S)$, where K is a subsemiring of S : AK$\subseteq$ K $\subseteq$ A for some left ideal A of S} and $\mathcal{C}_A$={$h \in \mathcal{C}_{ss} : f \circ h \subseteq h \subseteq f$ for some fuzzy left ideal f in S}.

First we claim $\mathcal{C}_A$ is closed under projection. Let $h \in \mathcal{C}_A$. Then $h \in \mathcal{C}_{ss} : f \circ h \subseteq h \subseteq f$ for some fuzzy left ideal f of S. By Proposition 2.7, for $r \in J$, $\mathrm{Rep}(f \circ h)(r) \subseteq \mathrm{Rep}(h)(r) \subseteq \mathrm{Rep}(f)(r)$. Since Rep commutes with operation ' $\circ$ ' (Proposition 2.9), we have, for $r \in J$, $\mathrm{Rep}(f)(r) \circ \mathrm{Rep}(h)(r) \subseteq \mathrm{Rep}(h)(r) \subseteq \mathrm{Rep}(f)(r)$. Since the classes $\mathcal{C}_{ss}$ and $\mathcal{C}_l$ are closed under projection by Theorem 5.1 and 5.2, therefore, $\mathrm{Rep}(f)(r) \in \mathcal{C}_l$ and $\mathrm{Rep}(h)(r) \in \mathcal{C}_{ss}$. Hence $\mathrm{Rep}(h)(r) \in \mathcal{C}_A \ \forall r \in J$. Therefore, $\mathcal{C}_A$ is closed under projection. Also $\mathcal{C}_{wil}$ is closed under projection by Theorem 5.7. Therefore, by Proposition 2.11, $\mathcal{C}_A = \mathcal{C}_{wil}$ if and only if $C_A = C_{wil}$.

The later proposition follows as a subsemiring K of a semiring S is a left weak interior ideal of S if there exist a left ideal A of S such that AK $\subseteq$ K $\subseteq$ A by Theorem 3.2 of [9] and *Chi* is an isomorphism from P(S) to C(S).

The following theorem ia an extension of Corollary 3.3 of [9] to fuzzy setting and can be proved similarly.

Theorem 6.3. Let S be a semiring and h be a subsemiring of S. Then, h is a fuzzy right weak interior ideal if and only if there exist a right ideal f such that $h \circ f \subseteq h \subseteq f$.

Theorem 6.4 Let S be an idempotent regular semiring. Then S is regular if and only if $f \circ f \circ S = f = S \circ f \circ f$ for every fuzzy weak interior ideals f of S.

Proof. Consider the (inf, sup, o, +)-algebra F(S). Let L(a)= aaS and M(a)=Saa and N(a)=a be expressions over the variable set {a} and set of operations { inf, sup, o , +}. Since the class $\mathcal{C}_{wi}$ is closed under projection by Theorem 3.9, therefore, by metatheorem, $L(f) = M(f) = N(f) \ \forall f \in \mathcal{C}_{wi}$ if and only if $L(f) = M(f) = N(f) \ \forall f \in C_{wi}$, where C_{wi} is the class of all crisp weak interior ideals of S.

By Theorem 4.8 of [9], S is regular if and only if AAS = A=SAA for every weak interior ideal of S. Since P(S) is isomorphic to C(S) under the isomorphism *Chi*, AAS = A = SAA if

and only if $\chi_{AAS} = \chi_A = \chi_{SAA}$ for every weak interior ideal A of S. Moreover, *Chi* commutes with the finite intersection and product of sets, therefore, S is regular if and only if $\chi_A\chi_A\chi_S = \chi_A = \chi_S\chi_A\chi_A$ for every weak interior ideal A of S. That is, S is regular if and only if $L(f) = M(f) = N(f)$ $\forall f \in C_{wi}$. Hence S is regular if and only if $L(f) = M(f) = N(f)$ $\forall f \in \mathcal{C}_{wi}$ .Therefore, an idempotent regular semiring S is regular if and only if $f \circ f \circ S = f = S \circ f \circ f$ for every fuzzy weak interior ideal f of S.

Theorem 6.5. Let S be a semiring. Then,

(1) The intersection of two fuzzy left weak interior ideal of a semiring S is a fuzzy left weak interior ideal of S.
(2) The intersection of a fuzzy left weak interior ideal and a fuzzy left ideal of a semiring S is a fuzzy left weak interior ideal of S.
(3) The intersection of a fuzzy right weak interior ideal of a semiring S and a fuzzy right ideal is a fuzzy right weak interior ideal of S.
(4) The intersection of a fuzzy weak interior ideal and a fuzzy ideal of a semiring S is a fuzzy weak interior ideal of S.

Proof. We establish (4).

Let $C_{wi,i}$ ={ $f_1 \cap g_1 : f \in C_{wi}, g_1 \in C_i$ } and $\mathcal{C}_{wi,i}$ ={ $f \cap g : f \in \mathcal{C}_{wi,i}, g \in \mathcal{C}_i$ }, where C_{wi} and C_i are class of all crisp weak interior ideals and two sided ideals of S. First we show that $\mathcal{C}_{wi,i}$ is closed under projection. Let $f \in \mathcal{C}_{wi,i}$. Since Rep commutes with infs of finite sets of fuzzy sets (Proposition 2.6), we have for all $f \in \mathcal{C}_{wi}$ and $g \in \mathcal{C}_i$, $\text{Rep}(f \cap g)(r) = \text{Rep}(f)(r) \cap \text{Rep}(g)(r)$ $\forall r \in J$. Since $\mathcal{C}_{wi}$ and $\mathcal{C}_i$ are both closed under projection by Theorem 5.9 and 5.3, we have $\text{Rep}(f)(r) \in \mathcal{C}_{wi}$ and $\text{Rep}(g)(r) \in \mathcal{C}_i$. Hence $\text{Rep}(f \cap g)(r) \in \mathcal{C}_{wi,i}$ $\forall r \in J$. Therefore, $\mathcal{C}_{wi,i}$ is closed under projection. Therefore by Proposition 2.11, $\mathcal{C}_{wi,i} \subseteq \mathcal{C}_{wi}$ if and only if $C_{wi,i} \subseteq C_{wi}$. By Corollary 3.6 of [9], the intersection of a weak-interior ideal and a two sided ideal is a weak-interior ideal and *Chi* is an isomorphism from P(S) to C(S), we have, $C_{wi,i} \subseteq C_{wi}$. Hence by Proposition 2.11, $\mathcal{C}_{wi,i} \subseteq \mathcal{C}_{wi}$.

The other results are extensions of Theorem 3.3 and Corollary 3.5 of [9] to fuzzy setting and can be proved similarly.

References

[1] Head T, A metatheorem for deriving fuzzy theorems from crisp versions, Fuzzy Sets and Systems, 73(1995) 349-358.
[2] Iseki K, Quasi-ideals in semirings without zero, Proc. Japan Academy, 34(2) (1958), 79-84.
[3] Jain A, Tom Head's join structure of fuzzy subgroups, Fuzzy Sets and Systems, 125(2002) 191-200.
[4] Liu W J, Fuzzy invariant subgroups and ideals, Fuzzy Sets and Systems, 8 (1982) 133- 139.
[5] Rao M M K, Bi-quasi-ideals and fuzzy bi-quasi ideals of τ-semirings, Bull. Int. Math. Virtual Inst., 7 (2017) 231-242.
{6} Rao M M K, A Gereralization of bi-ideals in semirings, Bull. Int. Math. Virtual Inst., 8(2018)123-133.

[7] Rao M M K, Fuzzy left and right Bi-Quasi ideals of semirings, Bull. Int. Math. Virtual Inst., 8 (2018) 449-460.

[8] Rao M M K, Arsham Borumand Saeid, Rajendra Kumar Kona and Noorbhasha Raf, Fuzzy (Soft) Quasi-Interior Ideals of Semirings, Transactions on Fuzzy Sets and Systems, 1(2)(2022) 129-141.

[9] Rao M M K, Weak-Interior Ideals, Bull. Int. Math. Virtual Inst., 12(2)(2022) 273-285.

[10] Srivastava R and Sharma R, Fuzzy quasi-ideals in semirings, International Journal of Mathematical Science, 7 (2008) 97-110.

[11] Srivastava R and Arvind, Generalization of Fuzzy ideals of Semirings and Metatheorem, Annals of Fuzzy Mathematics and Informatics, 27 (3)(2024) 245-255.

[12] Szasz G, Interior ideals in semigroups. Notes on Semigroups IV Dept. Math. K. Marx. Univ. Economics, (1977) 1-7.

[13] Vandiver H S, Note on a simple type of algebra in which the cancellation law of addition does not hold, Bulletin of the American Mathematical Society, 40(12)(1934) 914-920.

[14] Zadeh L A, Fuzzy Sets, Inform. and Control, 8(1965) 338-353,

RELIGION AND POLITICAL POWER IN THE MUGHAL EMPIRE: A HISTORIOGRAPHICAL ANALYSIS OF DARA SHUKOH AND AURANGZEB

- Mahima Kamboj

Abstract:

The relationship between religion and political power in the Mughal Empire through the contrasting cases of Dara Shukoh and Aurangzeb. It challenges the simplistic portrayal of Dara as a liberal and Aurangzeb as an orthodox ruler by analysing the interpretations of historians such as Munis Faruqui, Athar Ali, Satish Chandra, Richard Eaton, and Katherine Butler. The study argues that religious policies, including debates over jizya, temple desecration, and music, were shaped by political competition, imperial legitimacy, and changing socio-political circumstances rather than religious ideology alone. It concludes that power and context significantly influenced Mughal religious policies.

Keywords:

Dara Shukoh,Aurangzeb,Mughal Empire,Religion and. Politics,Historiography,Jizya,Temple Desecration Mughal Religious Policy

Introduction:

Since the inception of Mughal Empire, Mughal rulers has been seen in engagement with religion in various forms , tracing from Babur's interactions with religion to Akbar, to Jahangir and Shahjahan.Interactions with religion was actually shaped by the pol-social context of the time and generally associated with winning political gains and thus before analysing attitudes of seekers of power its also important to see it in the context which shaped their policies.In reference to Dara Shukoh and Aurangzeb, old historiography often resonated it in terms of binaries , one represented liberal ideology other stood for orthodoxy. In old historiography, some scholars such as IH Qureshi, SM Haq sees it in terms of struggle between two communities, Hindus and Muslims. They took it as decisive turning point in medieval India. To them Akabr's tolerant reign led to hindus getting out of hand and even persecuting Muslims and Dara in same line represented as traitor of Islamic political community and thus Aurangzeb came to undone the wrongs did to Muslims and fought essentially for the faith rather for throne. According Munis Faruqui these historians opinions are in same line of ideas explained in Alamgirnama,ie,

Dara's intellectual undertakings and his claims were not only misleading but also possessed threat to Islam. Whereas on other hands there are scholars, nationalist historians who sees him as liberal, tolerant who embodied the failed promise of greater Hindu and Muslim understanding. Thus for these nationalist scholars Aurangzeb represent the other end, Jadunath Sarkar opined that Aurangzeb's real aim was establishment of Islamic state(darul islam), represented by conversion of entire population into Islam and extinction of every form of dissent . He thus even sees Aurangzeb's religious policy towards temples, jaziya, and so in this context.R.P.Tripathi another nationalist historian argues that religion served war cry to build Aurangzeb's supporters.

Munis Faruqui argued that taking Dara's religious interactions with Advaita Vedanta representing his liberal position is simplistic way of understanding both his philosophy and

it's political implication. He argues that Dara actually build upon the long line of tradition of scepticism existed very next century After the rise of Islam to which scholars regarded as "crises of knowledge", in which Muslim scholars commented on other philosophical traditions such as Buddhism, Greco Hellenistic, Hinduism etc. By 11th century they reached to conclusion that all philosophical traditions had some access to divine revelation and truth. In this long line of scholarship one important thinker was Ibn al-Arabi who sees Islam as sun whereas other religions as stars and thus puts Islam above other religion in terms of hierarchy Such ideas are again articulated by mulism sceptics In Indian subcontinent , one such was Albiruni, who says that idols actually represents abstract reality to uneducated masses and claims that even Brahmins also worships single God. There are various others Muslims intellectuals as well such as al-shahrastani, Amir Khusrau, but in all these true religion with god is seen as Islam . Major break comes with Abul Fazl who saw universal principles of truth as common to all. Even this idea was also prevalent in sufis orders existed during this time. In this long line comes Dara's close examination of Hindu philosophy which are seen as unusual but were within the Islamic tradition. His mentor was aljili who has placed Hinduism and Islam on same pedestal. Munis Faruqui has divided his scholarly career into 2 periods, first from mid 1630s to late 1640s and second publication of Siri akbar in 1657. During his first phase, in Sakint al awliya he claimed that under influence of Qadiri shaiks Miyan Mir and Mullah Shah Badakhshi that attained spiritual extraordinariness or visions. Inlate 1640s in Tariqat alhaqiqat, he shows his quest for unanswered things in Islam and finds that both hinduduism and Islam talk about same ultimate truth and therefore he sees omnipresence of God everywhere. He was also involved in translations of vedantic texts and closely investigating of yogavasishtha which focuses on Ram's quest for jivanmukti or liberation and he also engaged with Baba Lal Das. All this convinced him that Hinduism had monotheism and thus in majmaalbahrayn he claimed that there are only verbal difference between the two. But here he says that this work is only for those who have intellect and only for family. Major break comes with his sirr-i-akbar, which he said was intended for devout Muslims and thus actually claimed a status which threatened not only Aurangzeb But also Ulama as well.Munis Faruqui argues that his engagement with Shanakracharya led him to advance extraordinary claim that upnishads were God's original revelation about Divine unity /oneness, in introduction of this text and , as spring of all expressions of tawhid(monotheism) and crucial commentary on Quran. Munis Faruqui argued that he defended it by attacking ulamas by linking them to jahils(uninformed) and thus rendered them incapable for questioning dara's claims since they don't have enough knowledge. Faruqui further says that the reason of resonating with Shanakracharya was the concept of jivanmukti in which one who attains can sees the reality and not touched by illusion of fear, ove,etc.

The very related concept to this is of , perfect man in Islam, which Dara claims for himself and thus not only laying path for other devout to follow him but also able to reorganize umma or brotherhood and thus claims leadership as well. Dara through this also shows that he is serving Muslims by revealing them the secrets of divine text which till then not revealed. Faruqui says that So through sirr i akbar not only celebrating his philosophical achievement but here underlining intention was his political aspirations and therefore this comes very moment when emperor fell ill. Since unlike Aurangzeb he wasn't militarily great nor served in mughal subhas and led only one unsuccessful campaign and thus he presented his candidature in this way , as a great man of intelligence, wisdom, in San i Kami. Faruqui argues that it is In this context of political competition one needs to understand Aurangzeb religious posturing as rival contender.But did he actually raised slogan of Islam in danger, in this regard, Athar Ali sheds light on it by looking at Nishan from Aurangzeb to Rana raj Singh of Mewar, to extend alliance , in which Aurangzeb pledged to restoring the paraganas

of Mandalgarh and having no intention to change the religious policy of his predecessors and thus shows his stand with established imperial policy. In another instance in his agreement with Murad talked about Dara as Prince of heretics and sought blessings of sheikh Abdul Latif of Bhuranpur to fight with heretic. But Athar Ali argues in this how much he was serious can be seen from his letter replying to Jahanara after battle of Dharmat where he nowhere mentioned about Dara's religious views and only sees Dara's action as injurious to empire in political terms since Dara earlier withdrawn forces during Bijapur campaign in 1657. Athar Ali argues its only after the battle of Samugarh that Dara's heresy was seen proclaimed by Aurangzeb as main reason for war but here also it was to justify his execution rather to explain Aurangzeb taking up of arms.Even in nobility, war of succession was not regarded as war between two faiths. Athar Ali argues that it wasn't that Muslim officials unanimously aligned themselves with Aurangzeb. Moreover Aurangzeb also able to get support of large no of rajputs including Rana Raj Singh of Mewar, Mirza Rana Jai Singh of Marwar. After analysing various sources Athar Ali gives us the composition of nobility before battle of samugarh where both Dara and Aurangzeb have equal numbers of Hindu nobles, so he argues that there was nothing like division of nobility based upon religious or racial lines. SR Sharma pointed out that during Aurangzeb reign on one hand there was decreasing no of Hindus nobles and increasing mansabdars whereas on other, Hindus weren't even given higher executive posts. But from Athar Ali's work, we can see, since Jahangir(1606) no important position was given to rajputs whereas during Aurangzeb's reign jai Singh was given governorship of deccan wherea jaswant Singh was given of Gujarat. According to Satish Chandra even the break with Rana Raj Singh came not because of his orthodoxy rather because of desire of Mewar to grew powerful in Rajputana affairs. Refuting Sarkars claim of eschestment of state after Raja Jaswant Singh death, Chandra argues that it was common practise whenever there we dispute over succession.Satish Chandra even says that it's important to look at context when Aurangzeb ascended the throne to understand his religious policy.

During his accession, treasury was empty and therefore his resort to simplicity from marked embellishment of court was justified with Islam. SR Sharma says that various acts of operation marked Aurangzeb's reign. Therefore reimposition of jaziya as seen by nationalist historians as watershed in Medieval Indian history. Even Sarkar had also seen the religious policy of mughals in terms of individual mughal ruler's perception, where socio-political-cultural factors played marginal role. He goes on to say that reimposition ultimately led to alienation of rajputs,marathas Hindus in generally and therefore led disintegration. There are two kind of sources which talked about jaziya, one Persian sources which depicts the act as keeping in demands of Sharia whereas European traveller accounts of Thomas Roll and Manuchii who talked about economics motives, and also to induce forcible conversion. Satish Chandra argues that jaziya was there for 450 years and if then large scale conversion did not happen then how it can be used now. In economic interpretation it has been argued that since Aurangzeb abolished various cesses and therefore imposed jaziya.But we have little evidence that in such time jajagirdari crises , who were not actually collecting. Moreover jaziya cannot compensate increasing financial crisis since it was kept separately as Khazanan i Jajiyah for charitable purposes. Moreover why it was reimposed after 22yrs of his reign if it was result of his orthodoxy only. So important to understand the 17th century socio-political-religious context.In this context, Satish Chandra argues that from very beginning of Delhi sultanate theologians tried to influence state and wanted to attain powers.

But ulama cannot be igorned by emperors since Islam considered as only bond of unity among diverse Muslim ethnicity in non Muslim majority area. Thus this contention between two marked medieval Indian society. It as only Akbar who tried to sideline the ulama through

sulhikul. The strong criticism can be seen in sheikh Ahmad sirhindi and Salim rebellion. During Jahangir avoided giving open offence to Ulama but also at same time not diverge from Sulhikul. By Shahjahan reign, they grew again powerful, where he also seen as defender of Islam but at same time denied ulama says in determining policy. In this context comes Aurangzeb reign, since his accession was unIslamic and to justify Dara's execution he sorted their support and therefore he postulated Islam as shaped of Mughal policy in first decade of his reign, but still alliance with Rajputs continued to exist. By 1670s Marathas rose powerful as defender of deccan where as his all attempts failed to in deccan. It is in this deepening of Deccan crisis, in context of changed in mughal policy to direct conquest and coincidence of rajput rebellion which led him to reimposed jaziya to have rally of Muslims behind him and to gain their support. Moreover already jafirdari crises he increased discontent among ulamas and nobility as well so it actually provided them with employment as well. This policy continued in his first half of his second phase of reign till the conquest of bijapur and Ahmednagar. Apart to declaring it as war against infidels where he postured Golconda ruler Abul Hassan as infidel, he also offered bijapuri nobles jagirs to be retained after conquest. At moment of conquest he made big gesture in support of Islam by ordering paintings to destroyed in palace of Sikandr Adil shah, to destroy temple and therefore rhetoric of Islamic state was visible.But after conquest despite his pronouncements temples were not broken. He even incorporated PamNayak, given him mansab of 5000.

So Satish Chandra argues that his religious policy we actually marked and depended on changing political context. He did so to build alliance with indigenous locus of power at local levels and Chandra further says that removal of jaziya in Deccan can be seen in this light.Relations with Marathas has been also seen in this religious colouring only and thus while addressing this Satish Chandra says that even during simultanous campaign by Shivaji, many Marathas were accepted into service. Moreover Athar Ali has shown that 1/6 of nobility of Aurangzeb we formed by Marathas.Hindu nationalist generally marked the medieval Indian history with temple desecration as part of onslaught of Muslim rulers. According to Richards Eaton this understanding is actually based on selective translations of Persian sources done by Britishers. He traced back it to the indic tradition of early medieval india. He points out that in Indian context, rulers legitimacy and prosperity of the region is associated with royal temple ,with the rastra-devta and thus royal temple was normally looted, destroyed, detaching of idol were common manifestations of power of conquered and thus which temples are politically irrelevant were left untouched. Moreover as against Hindu nationalist no of 60000 temples destroyed over 13-17 century, Eatons says only 80 temples were destroyed. Also temples were generally found to be destroyed lying in frontiers since shifting frontiers led to their destruction. Deity shedding tears actually means the shattering of political legitimacy as well. Another way of destroying legitimacy of defeated rulers is through shifting of supreme deity for e.g. ulugh khan brought the Somnath idol to Delhi and hence legitimacy shifted to Delhi.

Building of mosque over temple also helped them to appropriate not only structure but more legitimacy as building mosque is service to people.Eaton argues that Mughal were closely related to temple institution and thus see all under their sovereign territory as state property and hence under their protection. Thus we have constantly reference of rebuilding, renovation of temples and even building of new temples as reward as well. Madad i mash to temples were continued by Aurangzeb and even new grants were given to temple at marwar and Sikh gurudawara was also made at Dehradun.Thus if temples can be build in reward it can be destroyed as punishment. Thus also carried out to maintain order or against rebellion. Such as during Shahjahan’s reign when Jajhar Singh Bundella of Orcha rebelled and thus few temples were broke in Orcha. In same manner in Aurangzeb’s reign rebellion at Banaras and Mathura

both led to destruction of temples vishwanath and Keshavdev temples respectively and again in Rathore rebellion led destruction of temples at jodhpur, Udaipur, Chittor. Reason why mosques were not destroyed was that, Eaton argues that mosque did not link to political legitimacy of rulers. Eaton and Satish Chandra argues that the reason believe that all temples were ordered to be destroyed is based upon order present in masiri i alamgiri which is wrongly read, actually talking about objectionable teaching being taught in thatta and Multan and therefore Aurangzeb ordered to demolish all such places but after scrutinizing.

Thus Richard Eaton argues that if theology of iconoclasm was behind desecration then all temples would have destroyed and thus it was politically motivated decisions rather religiously guided. Moreover coming of Islamic rulers did not Mark break from past rather SR Sharma argues that Aurangzeb's accession to throne was marked by increasing Muslim colouring of court and court ceremonies. To further tried to impose Muslim way of life he even banned Music as well. Thus Butler argues that in Indian history Aurangzeb's Islamic orthodoxy is seen as causing repression of Indian religious and cultural expression. Butter traces four episodes related to ban of music. First was related to HiraBai Zainabadi whom he met in deccan in 1653 and fell in love with her. Two sources talks about it on is Manucci and Kafi khan. In Manucci version after her death he banned Music but contradiction since if he banned now then how he cn banned again. In kafi khan version his encounter with music is portrayed in positive light who tried hard to maintain his purity whereas in Manucci version women, wine and song come together which in indo-perso writings marked read in for downfall of the ruler. Shahnavas khan in his text argues that it is Dara Shukoh who actually cultivated this story to portray Aurangzeb in dark light. Likewise there are 2 more incidences only referred by Manucci in one in which during Dara funeral procession people were laminating and singing song and thus he banned it but people still continue humming. Whereas in another episode Shahjahan was disallowed to have its entourage and therefore he resorted to smuggling. Buttler argues that Manucci actually uses music as a weapon to contrast between Good and bad, Dara as good, as supporter of music whereas Aurangzeb as repressor of it. Moreover in both these he tried to show that Aurangzeb as powerful yet his rule was unpopular and ineffective. But Butler refuted Manucci claims and gives us various example of existence of music in its full form, such as during his coronation, no of drupads composed in his reign, description of music in 1665 by Tavernier and so on.

Important episode of ban of music is marked by 1669. This episode is narrated in Baktawar khan's text masisrialamgiri, in khafi khan and by Manucci as well. So some sort of ban was there. Manucci in this respect tells that it led to widespread unemployment of musicians as well as impacted the long drawn treatise of knowledge in form of master and disciple. Whereas Khafi khan narrative tells us that ban was only on certain sorts of musical performance ie qawwals and kalawants and therefore he even raised their mansabs as well. Talking about sources ie Manucci he wasn't there when this happens moreover we know his account is mainly based on gossips and also influenced by his biases towards Aurangzeb and hence Butler questioned it veracity. Even khafi khan traces it from Mamuri which was actually written by 3 people under this name who were opponents of Aurangzeb.Some scholars like Miner argues that ban of music in Delhi led to its flourishing in other areas like Bikaner as musicians migrated there. But butler argues that to believe this is difficult since these raise are well established under Mughal hierarchy as mansabdars were present in court only and moved along court and hence if rsjas would have been sponsoring then how come Aurangzeb didn't know about it. Other sats that increase in written treatise was actually shows their protest. But Butler shows that Rasbaras khan, son of khushlal khan kalawant, his treatise dedicated it to emperor Aurangzeb and no where mentioned about crises in music. Moreover we have evidence of flourishing of music even after ban. His immediate family

members were great patrons of music which includes Jahanara begum, his favourite son Muhammad Azam ,his favourite daughter Zebunnisa, his senior nobles and so on. Rather his reign marked the zenith of Indian classical music.In his personal letter to Prince Azam he praises the Shahjans life and saw music as sovereignty and life. Thus what Butler concludes is that he did ban music but that was related to his personal context and he didn't imposed it on public, and therefore even after his ban it continued to exis. Moreover there was no such compulsion for qawwals and kalawants to either stop performing or leave his service and thus we see Rasbars khan continued to flourish. Another interesting fact she pointed out is that in Mughal ideals regarding manliness, was yo able to exercise control over oneself and seen as central to mirzai. Thus therefore she argues that Aurangzeb might thought that giving up music was a sacrifice worth making his public piety. Moreover it was sacrifice which he did as some sort of music was ban in Islam but in mughal theory of kingship, music has an important place and power as well ,which made person control various emotions and thus self control then got transcended to control over empire. Thus abstaining from music was self sacrifice which he has done. Thus Sarkar who sees personality as responsible for it, rather Butler's studies show that his personal stance was in no way enforced upon the public.

Thus one can conclude that interaction with religion and policies towards it should be read in the wider context of interplaying of different circumstances which includes personal predictions, belief of ruler, attitudes and values of ruling classes, power of theological classes. There is also need to read the source carefully and to rise above the binaries which still hunts the present.

Bibliography:

- Faruqui, M.D."Dara Shukoh, vedanta and imperial succession in Mughal Indian" in Religious interactions in Mughal India,2004
- Ali,A."The religious issues in the war of succession 1658-59" Mughal india:studies in polity, idea and society and culture. Delhi,2004
- Chandra,S."reassessing Aurangzeb" in Historiography ,religion and state in Medieval india. Delhi,1996
- Chandra,S."Aurangzeb -A critical review " in Historiography ,religion and state in Medieval india. Delhi,1996
- Chandra,S."Jizyah and the state in india durinf the seventeenth century " in Mughal Religious policies, the Rajputs and the Deccan, Delhi, 1993
- Eaton,R. "Temple Desecration and indomuslim states" In Piety and politics in the early Indian Mosque. Delhi, 2008
- Brown, K.B " Did Aurangzeb ban music? Questions for the historiography of his reign",Modern Asian Studies, Vol 41, Jan 2007